पहला नम्बर

[मूल बाम्ला से अनूदित]

लेखक
रवीन्द्रनाथ ठाकुर

प्रभात प्रकाशन
दिल्ली-६

प्रकाशक प्रभात प्रकाशन, चावडी बाजार, दिल्ली ११०००६

अनुवादक राजेश दीक्षित

संस्करण १९८०

मूल्य दस रुपये

PAHLA NUMBER *by* Ravindra Nath Tagore Rs 10 00

कथा क्रम

पहला नम्बर

मैं तम्बाकू तक नही पीता। मेरा एक ही सबसे वडा नशा है, उसी के प्रभाव से अन्य सभी नशे एकदम जड तक सूख कर मर गये हैं। वह मेरा नशा है पुस्तकें पढने का। मेरे जीवन का मन्त्र यही था—

यावज्जीवत् वानही जीवेत
ऋण कृत्वा बही पठेत

जिन्ह घूमने का शौक अधिक होता है, परन्तु पाथेय का अभाव रहता है, वे लोग जिस तरह से टाइम-टेबिल पढ़ते हैं, अल्पायु म—आर्थिक परेशानी के दिनो म, मैं उसी तरह से पुस्तका के सूचीपत्र पढा करता था। मेरे वडे भाई के एक चचिया श्वसुर किसी बँगला-पुस्तक के प्रकाशित होते ही, उसे बिना विचारे खरीद लेते थे—और उनका मुख्य घमण्ड यही था कि उन पुस्तको मे से एक भी आज तक खोई नही है। शायद सारे बगाल मे ऐसा सौभाग्य और किसी को नही मिला होगा। कारण, धन-बल, आयु-बल, अन्यमनस्क व्यक्ति का छाता-बल ससार मे जितने भी गतिशील पदार्थ हैं, उनमे बँगला-पुस्तकें सबसे श्रेष्ठ हैं। पुस्तको का महत्व इसी से समझा जा सकता है कि भाई के चचिया श्वसुर की पुस्तका की अलमारी की ताली—भाई की चचिया सास के लिए भी दुलभ थी। 'दीन यथा राजेद्र सगमे'—मैं जब बाल्यावस्था म भाई साहब के साथ उनकी ससुराल मे जाता था, इन बद अल्मारिया की ओर देखता

हुआ समय काट देता था। उस समय मेरी आँखो की जीभ मे पानी आ जाता था। इतना कहना ही यथेष्ट होगा, बचपन से ही मैं इतना अधिक पढा था कि परीक्षा म पास नही हो सका। पास करने के लिए जितना कम पढना आवश्यक है, उसके लिए मेरे पास समय नही था।

मैं फेल होने वाला लडका था, इसलिए मुझे एक बडी सुविधा यही थी कि विश्वविद्यालय के घडे के घिरे सडे पानी म मरा स्नान नही होता था—स्रोत के पानी म नहान का ही मुझे अभ्यास था। आजकल मेरे पास अनेक बी० ए०, एम० ए० आत रहते है, वे कितने भी आधुनिक हो, आज भी वे लोग विक्टोरिया युग मे नजरबन्द बने बैठे हैं। उनकी विद्या का ससार, मानो डगमगाती हुई पृथ्वी का अठारहवी उन्नीसवी शताब्दी के साथ स्क्रू लगाकर कसा हुआ है। बगाल के छात्रो का दल, पीढी-दर पीढी उन्ही की मानो चिरकाल तक प्रदक्षिणा करता रहेगा। उनके मानस रथयात्रा की गाडियाँ बडे कष्ट से मिल बेन्थम को पार कर, कार्लाइल रस्किन तक आकर जमीन पर गिर पडती है। मास्टर साहब के प्रवचन की चहारदीवारी के बाहर, वे लोग साहस करके हवा खाने के लिए भी नही निकल पाते।

परन्तु हम लोग जब साहित्य को खूटा समझ कर मन को उसमे बाँधे हुए जुगाली करत रहते हैं तो देश का साहित्य भी तो अचल नही होता—वह तो जन जीवन के साथ साथ चलता है। वह जीवन म नही जी पाता था, परन्तु उसकी चाल का अनुसरण करन की मैं इच्छा करता था। मैंने अपनी ही चेष्टा से फ्रेंच, जमन इटलियन भाषाएँ सीख ली थी, थोडे दिन हुए रशियन सीखना भी शुरू कर दिया था। आधुनिकता की जो ऐक्सप्रेस गाडी, घण्टे म साठ मील के वग से दौडती चलती है मैंने उसी का टिकिट खरीदा था। इसीलिए मैं हक्सले डारविन तक आकर भी रुक नहीं सका टेनीसन पर भी विचार करत हुए नही डरा यही क्या—इब्सन मेटरलिक के नाम की नाव पकड कर, अपनी मा यतानुसार साहित्य म सस्ती ख्याति का बँधा हुआ कारबार चलाने म भी मुझे सकोच अनुभव होता।

मुझे भी किसी दिन लाग भीड म खोज करके पहचान लेंगे यह मेरी आशा से परे था। मैंने देखा—बगाल मे ऐसे दोर चार लडके भी मिलत हैं जो कालेज भी नही छाडते, और कॉलेज के बाहर सरस्वती की जो वीणा बजती है उसकी

पुकार से भी मतवाले हो उठते हैं। वे ही क्रमशः एक-एक करके मेरे घर में आकर इकट्ठे होने लगे।

यहीं मुझे एक दूसरा नशा चढ़ा—बकना। भद्रभाषा में उसे आलोचना करना कहा जा सकता है। देश में चारों ओर, सामयिक और असामयिक साहित्य के बारे में जो सब बातें सुनता था, वे एक ओर से ऐसी कच्ची और दूसरी ओर ऐसी पुरानी थीं कि बीच-बीच में उनकी घुटनभरी भाप जैसी उमस को उदार चिन्तन की खुली हवा से काट देने की इच्छा होती थी। फिर भी लिखने में शर्म आती थी। इसलिए मन लगाकर बात सुनने वाले ऐसे लोगों का सम्पर्क पाकर मैं सतुष्ट था।

मेरा दिल बढ़ने लगा। मैं रहता था अपनी गली के दो नम्बर वाले मकान में। चूँकि मेरा नाम अद्वैतचरण था, अतः मेरे दल का नाम हो गया द्वैताद्वैत सम्प्रदाय। हमारे इस सम्प्रदाय में किसी को भी समय असमय का ध्यान नहीं था। कोई पंच की हुई ट्राम की टिकिट को पुस्तक के पन्नों के बीच में लगाकर, किसी नयी प्रकाशित अँग्रेज़ी की पुस्तक को हाथ में लिये हुए सुबह ही आ उपस्थित होता। तर्क करते करते एक बज जाता, फिर भी तर्क समाप्त नहीं होता। कोई कॉलेज के ताज़े नोट्स ली हुई कापी लेकर शाम को आ उपस्थित होता और रात के दो बज जाते तब भी उठने का नाम नहीं लेता। मैं प्रायः उन लोगों से खाने के लिए कहता। कारण, देखता था कि जो लोग साहित्य चर्चा करते हैं, उनमें रसनता की शक्ति केवल मस्तिष्क में ही नहीं, रसना में भी खूब प्रबल होती है। परन्तु जिनके भरोसे पर इन सब भूखों को जब तब खाने के लिए मैं कहता था, उनकी हालत क्या होती है—उसे मैं मन में बराबर तुच्छ ही समझता आया था। संसार में भाव और ज्ञान के जो सब बड़े-बड़े कुम्हार के चाक घूमते रहते हैं, उनमें कितने ही विचार कच्चे ही टूट कर गिर जाते हैं, उनके लिए घर गृहस्थी का काम काज और रसोईघर के चूल्हे की अग्नि क्या अर्थ रखती है।

भवानी की भृकुटि भंगी को भव (शंकर) ही जानते हैं—ऐसी बात काव्य में पढ़ी थी। परन्तु भव के तीन नेत्र हैं, मेरे केवल दो ही थे, उनकी भी देखने की शक्ति-पुस्तकें पढ़ पढ़ कर क्षीण हो गई थी। इसीलिए असमय में भोजन तैयार करने के लिए कहने पर, मेरी पत्नी के भ्रू चाप में किस तरह की चपलता उत्पन्न हो जाती थी, वह मेरी दृष्टि में नहीं पड़ती थी। क्रमशः उन्होंने समझ लिया था,

कि मेरे घर म असमय ही समय है और अनियम ही नियम है। मेरी ससार की घडी सुस्त थी और मेरी गृहस्थी के मोटर-माटर म उनचास पवनो का निवास था। मेरी जो कुछ अथ सामथ्य थी, उसके लिए एक ही नाली खुली थी, वह थी पुस्तकें खरीदन की ओर, गृहस्थी की अन्य आवश्यकताएँ देशी कुत्ते की भाँति, मेरे इस शौकरूपी विलायती कुत्ते की जूठन चाटकर और सूघ-सूघकर किस तरह बची हुई थी, उसका रहस्य मेरी अपेक्षा मरी पत्नी ही अधिक जानती थीं।

नाना प्रकार क ज्ञान विज्ञान की बातें करना—मुझ जस व्यक्ति के लिए नितान्त आवश्यक था। मेरी विद्या प्रकट करन के लिए नहीं, दूसर का उपकार करने के लिए भी नही थी—यह थी बोल बोल कर चिन्तन करन, अथवा ज्ञान को हजम करने की एक व्यायाम प्रणाली। मैं यदि लेखक हाता या अध्यापक होता, तो बकना मेरे लिए गुण हो जाता। जिन्हे बँधी मजदूरी करनी पडती है, भोजन हजम करने के लिए उन्हे उपाय नही ढूँढना पडता—जो लोग घर म बठकर खाते हैं उन्हे अन्तत छत के ऊपर घम घम करके टहलन की जरूरत पडती है। मेरी वही दशा थी। इसीलिए जब मेरा द्वैतदल नही जमता था, उस समय मेरा एकमात्र दल थीं मेरी पत्नी। उन्होंने मेरे इस मानसिक व्यायाम की शोरभरी प्रक्रिया, दीघकाल तक चुपचाप सहन की थी। यद्यपि व पहनती थी मिल की साडी, और गहनो का सोना भी विशुद्ध एव ठोस नहीं था, परन्तु पति के द्वारा जो अलाप सुनती थी—सौजात्य विद्या (Eugenics) कहिए, मेण्डेल-तत्व कहिए या गणितिक युक्तिशास्त्र ही कहिए, उसमे असत्य या मिलावट बिल्कुल नही थी। मेरे दल की वृद्धि हो जाने के बाद वे इस अलाप स वञ्चित हो गई थी, परन्तु उसके लिए उनकी कोई शिकायत मैंन किसी भी दिन नही सुनी।

मेरी पत्नी का नाम अनिला था। इस शब्द का क्या अथ है यह मैं नही जानता, मेरे श्वसुर भी जानते हो, ऐसा नही लगता। शब्द सुनन म मीठा था, एव अचानक ऐसा लगता था, जैसे इसका कोई अथ हो। शब्दकोष म कुछ भी लिखा हो मेरी पत्नी के नाम का असली अर्थ—अपन पिता की प्रिय पुत्री होना था। मेरी सास जब ढाई वष का एक लडका छोड कर मर गइ तब उस छोटे बच्चे की देखभाल करने के सुखद उपाय के रूप म, मेरे श्वसुर ने एक और विवाह कर लिया था। वे अपन उद्देश्य मे कितन सफल हुए, उसे इतन स ही समझा जा सकता है कि अपनी मत्यु से दो दिन पूव उन्होंने अनिला का हाथ पकड कर

कहा—'बेटी, मैं तो जा रहा हूँ, अब सरोज की बात सोचने वाला तुम्हारे अतिरिक्त और कोई नही रहा।' अपनी पत्नी और उनके लडको के लिए क्या व्यवस्था उन्होने की थी, सो तो मैं ठीक नही जानता, परन्तु अनिला के हाथ म गुप्त रूप से, वे अपना जमा किये हुए प्राय साढे सात हजार रुपये दे गये थे। कह गये थे—'इन रुपयो को ब्याज पर उठाने की जरूरत नही है—नकद खच करके इनम से तुम सरोज के पढने लिखन की व्यवस्था कर देना।'

मुझे इस घटना से कुछ आश्चय हुआ था। मेरे श्वसुर केवल बुद्धिमान थे सो नही, व थे जिसे कहा जाता है—विज्ञ। अर्थात् झोक म आकर कुछ नही करते थे, हिसाब करके चलते थे। इसीलिए अपने लडके को पढा लिखा कर आदमी बना देने का भार यदि किसी के ऊपर देना उचित था, तो वह मेरे ऊपर था, इस विषय मे मुझे सन्देह नही था। परन्तु उनकी लडकी उनके जमाई से अधिक योग्य है, ऐसी धारणा उन्हे कसे हो गई—यह मैं नही कह सकता। जाहिर है कि रुपये-पैसो के सम्बन्ध म वे यदि मुझे भरोसेमद समझते, तो मेरी पत्नी के हाथो मे इतन रुपये नकद न दे जाते। असल म, वे थे विक्टोरिया युग के फिलिस्टाइना, मुझे अन्त तक नही पहचान सके।

मन ही मन नाराज होकर, मैंने पहले तो सोचा था कि इस सम्बन्ध म कोई बात ही नही कहूगा। और मैंने कही भी नही। विश्वास था कि बात करन मे अनिला को ही पहल करनी पडेगी, इस सम्बन्ध मे मेरी शरण लिये बिना उसका काम नही चलेगा। परन्तु अनिला जब मेरे पास कोई परामश लेने नही आई, तब मैंने सोचा कि वह शायद साहस नही कर पा रही है। अन्त मे एक दिन बाता-ही-बातो मे जिज्ञासा की—'सरोज की पढाई लिखाई का क्या कर रही हो?' अनिला बोली— मास्टर रख दिया है, स्कूल भी जा रहा है।' मैंने आभास दिया, सरोज को सिखाने पढाने का भार मैं स्वय ही लेने को राजी हूँ। आजकल शिक्षा की जो सब नई प्रणालियाँ निकली है, उन्हे समझाने की चेष्टा की। मगर अनिला ने 'हा नही कहा, 'ना' भी नही कहा। इतने दिनो बाद मुझे पहली बार सन्देह हुआ कि अनिला मुझ पर श्रद्धा नही करती। मैंने कॉलिज की परीक्षा पास नही की है, इसीलिए वह सम्भवत मन मे सोचती है कि पढाई लिखाई के बारे मे परामश देने की क्षमता एव अधिकार मुझे नही है। इतन दिनो तक उससे सौजात्य-अभिव्यक्तिवाद एव रेडियो चाचल्य के सम्बन्ध मे जो कुछ मैंने

कहा था, निश्चय ही अनिला उनका कुछ भी मूल्य नही समझती। वह शायद सोचती है कि सेकेण्ड क्लास का लडका भी इनसे अधिक जानता है। क्योकि मास्टर साहब के हाथ से कान पकडकर ऐंठन मरोडन से ही सारी विद्याएँ झुण्ड बनाकर उसके दिमाग म बठ गई हैं। नाराज होकर मन-ही मन मैं बोला—स्त्रिया के सामन अपनी योग्यता प्रकाशित करन की आशा मुझे छोड दनी चाहिए। क्योकि विद्या बुद्धि ही उनकी प्रधान सम्पत्ति होती है!

ससार म अधिकाश बडे-बडे जीवन नाटक यवनिका की ओट म ही होते रहते है, पाँचवा अङ्क समाप्त होन पर वह यवनिका अचानक ही उठ जाती है। मै जब अपन द्वैता के साथ वेगास के तत्वज्ञान और इब्सन के मनस्तत्व की आलाचना करता था, उस समय सोचता था कि अनिला के जीवन यज्ञ की वेदी म कोई अग्नि ही शायद नही जल रही है। परन्तु आज जब उस अतीत की ओर पीछे फिर कर देखता हूँ, तो स्पष्ट दख पाता हूँ कि जो सष्टिकर्त्ता अग्नि जलाकर, हथौडी पीटकर, जीवन की प्रतिया तैयार करते रहते हैं, अनिला के ममस्थल म व खूब ही सजग थे। वहाँ एक छोट भाई एक दीदी एव एक विमाता क समावेश से—नियमित रूप म एक घात प्रतिघात की लीला चल रही थी। पुराण के वासुकि जिस पृथ्वी को धारण किए हैं, वह पथ्वी तो स्थिर है। परन्तु ससार म जिस स्त्री का वदना की पृथ्वी धारण करती पडती है उसकी वह पथ्वी क्षण-क्षण म—नये नये आघात से चचल हाती रहती है। उन आम तकलीफा के बोझ को छाती पर लेकर, जिसे घर गृहस्थी के छोट स छोट मामला स प्रतिदिन जूझना पडता है उसके अन्तर की बात अन्तर्यामी को छोडकर कौन पूरी तरह समझ सकेगा! अन्तत मैं तो कुछ भी नही समझा। कितना उद्वेग, कितन अपमानित प्रयास पीडित स्नेह की कितनी अन्तगूढ व्याकुलता, मरे आसपास की खामोशी म मथित हो उठती है मैंने यह जाना ही नही। मैं समझता था कि जिस दिन द्वत-दल क भाजन का दिन उपस्थित होता, उस दिन का उद्योग पव ही अनिला के जीवन का प्रधान पव है। आज खूब समझ पा रहा हूँ, कि सारी दुनियादारी के बीच यह छोटा भाई ही इस ससार म दीदी का सबसे अधिक अपना हो उठा था। सराज को आदमी बनान के सम्बन्ध म, मेरे परामश और सहायता को ये लोग पूणरूप से अनावश्यक समझ कर उपेक्षा करते थे, इसलिए मैंने भी उस ओर एक बार भी नही देखा, उसका क्या हाल चल रहा है, यह बात मैंने कभी पूछी

भी नही।

इसी बीच हमारी गली के पहले नम्बर के मकान म आदमी आ गये। यह मकान, पुरान समय के विख्यात धनी महाजन उद्धव बेडाल के जमाने मे बना था। उसके वाद दो पीढियो मे ही उस वश का धन जन प्राय समाप्त हो गया, दो एक विधवाएँ बची हैं। वे भी यहाँ नही रहती हैं, इसीलिए मकान बिगडी हुई हालत मे है। बीच बीच मे विवाह आदि सस्कार के लिए, इस मकान को कोई व्यक्ति थोडे दिनो के लिए किराये पर लेकर रह जाता है, शेप समय मे इतन बडे मकान के लिए किरायदार प्राय नही मिलता। इस बार जो आये, मान लो, उनका नाम राजा सिताशुमौलि था, और समझ लो कि वे नरोत्तमपुर के जमीदार थे।

मेर मकान के ठीक बगल म ही, अकस्मात इतने बडे एक शुभागमन को मैं शायद जान ही नही पाता। कारण, कर्ण जिस तरह से एक सहज कवच को शरीर पर धारण कर पृथ्वी पर आये थे, मेरे पास भी उसी तरह एक विधिप्रदत्त जन्मजात कवच था। वह थी मेरी स्वाभाविक अन्यमनस्कता। मेरा यह कवच खूब मजबूत और मोटा था। अतएव, सचराचर पृथ्वी पर चारो ओर जो सब ठेलाठाली गोल माल, भला-बुरा चलता रहता है, उससे आत्मरक्षा करने के लिए यह मेरा उपकरण काफी था।

पर तु आधुनिक काल के बडे आदमी, प्राकृतिक उत्पात से अधिक होते हैं, वे लाग अप्राकृतिक उत्पात हैं। दो हाथ, दो पाव, एक सिर जिनके ह, वे होते ह मनुष्य, जिनके अचानक कई हाथ, पाव और सिर बढ जाते हैं, वे होते है दैत्य। दिन रात शोर मचाते हुए वे लोग अपनी सीमा को भग करते रहते है एव अपने पराक्रम से स्वग मत्य को अस्थिर किए रहते हैं। उन लोगो के प्रति ध्यान न दना असम्भव है। जिन लोगो पर ध्यान देन की कोई आवश्यकता नही है, फिर भी ध्यान दिए बिना भी नही रहा जा सकता, वे लोग ही हाते हैं ससार के महाराग—स्वय इद्र तक उनसे डरते हैं।

मैंन मन मे समझ लिया कि सिताशुमौलि भी उसी दल का मनुष्य है। अकेला एक व्यक्ति इतने बेजा तरीके से ऊधमी हो सकता है, इसे मैं पहले नही जानता था। गाडी घोडा लोक लश्कर लेकर उसन जसे रावण की लका जमा दी थी। इसी कारण से ही उसकी ज्वाला से मरे सारस्वत—स्वगलोक का बेडा रोज

टूटने लगा।

उसके साथ मेरा पहला परिचय अपनी गली के मोड़ पर हुआ। इस गली का प्रधान गुण यह था कि मेरे जैसे अनमने आदमी भी—सामने की ओर बिना देखे, पीठ की ओर बिना ध्यान दिए दाएँ-बाएँ नजर डाले बिना भी यहाँ निरापद विचरण कर सकते थे। यही क्यों, यहाँ रास्त चलत मे भी—मेरेडिथ की कहानी ब्राउनिंग के काव्य अथवा हमारे किसी आधुनिक बगाली कवि की रचना के सम्बन्ध मे मन ही-मन तक वितर्क करते हुए भी, अकाल मत्यु से बचकर चला जा सकता था। परन्तु उस दिन खामखाह 'अरेडरेडरे' की एक प्रचण्ड गजना सुनकर, पीठ की ओर मुड कर देखा—एक खुली हुई बग्घी के एक जोडी लाल घोडे, मेरी पीठ पर गिरन ही वाले हैं। जिनकी गाडी थी, वे स्वय हाँक रहे थ, उनकी बगल म कोचवान बैठा था। बाबू ताकत लगाकर—दोनो हाथो से रास खीचकर पकडे हुए थे। मैंने किसी तरह उस सँकरी गली मे बगल की एक तम्बाकू की दुकान के खम्भे को पकडकर आत्मरक्षा की। देखा—मेरे ऊपर बाबू क्रुद्ध हैं। क्यों नहीं, जो खुद लापरवाही से रथ हाकत हैं, वे लापरवाह पदयात्री का किसी तरह भी क्षमा नही कर सकते हैं। इसके कारण का पहले ही उल्लेख किया जा चुका है। पैदल यात्री क केवल दो पाँव होते है, इसलिए वह होता है स्वाभाविक मनुष्य। और जो व्यक्ति बग्घी दौडाता फिरता है, उसके होते हैं आठ पाँव, सो वह हुआ दैत्य। अपन इस अस्वाभाविक पराक्रम के द्वारा ससार म वह उत्पात की सृष्टि करता है। दो पाँव वाले मनुष्य का विधाता, इस आठ पाँव वाली दुर्घटना के लिए तैयार नही था।

मानव-स्वभाव का स्वास्थ्यकर नियम है—इस अश्वरथ और सारथी—सभी को यथा समय म भूल जाना। क्योकि इस परमाश्चयमय ससार मे, ये सब विशेष रूप से याद रखने की वस्तुएँ नही है। परन्तु प्रत्यक मनुष्य म जिस मात्रा म गोलमाल करने की स्वाभाविक सीमा है, ये लोग उसकी अपेक्षा बहुत अधिक पर जबरन दखल किए हुए बठे है। इसीलिए यद्यपि मैं चाहता तो अपन तीन नम्बर क पडोसी का दिन प्रतिदिन, मास प्रतिमास भूला रह सकता था, परन्तु अपन इस पहले नम्बर के पडौसी को एक क्षण के लिए भूले रहना भी मुझे कठिन हो गया। रात मे उसके आठ-दस घोडे अस्तबल मे लकडी के फश पर बिना सगीत के ही जो ताल देते रहते थ, उससे मेरी नीद बुरी तरह चोट खाकर विपक जाती

थी। तिस पर सुबह के समय, उन आठ दस घोडो को आठ-दस सईस जिस समय जोर शोर से मलते थे, उस समय सौजन्य की रक्षा करना भी असम्भव हो जाता था। उसके बाद उनके उडिया बेयरा, भोजपुरी बेयरा, उनके पाडे-तिवारी दरबाना के दल म कोई भी, स्वर सयम अथवा मितभाषिता का पक्षपाती नहीं था। यही होते हैं दैत्य के लक्षण ! ये स्वय के लिए अशान्तिकर नही होते। अपनी बीस नाका से खर्राटे लेते समय रावण की नीद मे शायद व्याघात नहीं पडता था, परन्तु उसके पडोसियो की बात पर विचार कर देखिए ! स्वर्ग का प्रधान लक्षण होता है सतुलित सौंदय, दूसरी ओर—एक समय जब दानवो के हाथो स्वग के नन्दनवन की शोभा नष्ट हो गई थी, तो उसका प्रधान लक्षण था असतुलन। आज वह असतुलन का दानव ही, रुपयो की थैली को वाहन बनाकर मनुष्य के घर ससार पर आक्रमण कर रहा है। उसकी बगल काटकर यदि उससे बचकर निकलना चाहें, तो वह चार घोडे हांककर गदन पर आ पडता है—और ऊपर से आखें दिखाता है !

उस दिन शाम को, मेरे दोस्तो म से तब तक कोई नही आया था। मैं बैठा-बठा ज्वार-भाटे के सम्बन्ध मे एक पुस्तक पढ रहा था। इसी समय हमारे मकान की चारदीवारी को लाघकर दरवाजे को पार करती हुई, मेरे पडोसी की एक स्मारकलिपि झनझनकर मेरी काच की खिडकी के ऊपर आ गिरी। वह टेनिस की गेंद थी। चन्द्रमा के आकषण, पृथ्वी की नाडी की चचलता, विश्वगीतिकाव्य के चिरन्तन छन्द आदि सबको छोडकर याद आया कि एक व्यक्ति मेरे पडोसी हैं एव बिलकुल निकट के हैं—मेरे लिए वे सम्पूण अनावश्यक फिर भी अत्यन्त अवश्यम्भावी हैं। दूसरे ही क्षण देखा कि मेरा बूढा बेयरा अयोध्या दौडते दौडते हाफ्ते-हाँफते आ उपस्थित हुआ। यही मेरा एकमात्र अनुचर है। इसे पुकारकर नही पाया जा सकता, चिल्लाकर मैं इसे विचलित भी नही कर पाता—दुलभता का कारण पूछने पर कहता है—अकेला आदमी हूँ और काम बहुत है ! आज देखा कि बिना बुलाये ही, गेंद को उठाकर वह बगल के मकान की ओर दौड गया है। खबर मिली कि हर बार गेंद उठा लाने के लिए उसे चार पसे के हिसाब से मजदूरी मिलती है।

मैंने देखा कि न केवल उन्होने मेरी खिडकी तोड दी है मेरी शान्ति तोड दी है, बल्कि मेरे अनुचर-परिचरा का मन भी टूटने लगा है। मेरे कुछ न

कर पान के सम्बन्ध म आयोध्या वेयरे की अवगा प्रतिदिन बढ़ उठी है, यह उतनी आश्चय की बात नही है, परन्तु मेरे द्वैतसम्प्रदाय के प्रधान सरदार कन्हाईलाल का मन भी, बगल के मकान के प्रति उत्सुक हो उठा दीखता है। मेरे ऊपर उसकी जो निष्ठा है, वह उपकरण मूलक नही, अन्त करण मूलक है, यही जानकर मैं निश्चिन्त था, लकिन इसी बीच एक दिन देखा वह मेरे अयोध्या से भी पहल लपक कर, लुढकती हुई गेंद को उठाकर बगल क मकान की ओर दौडा जा रहा है। देखा कि इसी बहाने स वह पडोसी के साथ बातचीत करना चाहता है। सन्देह हुआ कि उसके मन का भाव किसी ब्रह्मवादिनी मैत्रेयी की भाँति नही है—केवल अमृत से उसका पट नही भरगा।

मैं पहले नम्बर वाल की बाबूगीरी का खूब तीखा मजाक उडाने की चष्टा करता। कहता—साज-सज्जा स मन की शून्यता को ढँकने का प्रयत्न ठीक उसी तरह है, जसे रगीन बादलो से आकाश को छा देने की दुराशा। जरा-सी हवा लगते ही बादल हट जाएँगे, आकाश बाहर निकल पडेगा। मगर कन्हाईलाल ने एक दिन प्रतिवाद करते हुए कहा—आदमी एकदम शून्य नही है, बी० ए० पास किया है। कन्हाईलाल स्वय बी० ए० पास था, इसलिए मैं इस डिग्री के सम्बन्ध मे कुछ कह नही सका।

'पहले नम्बर' का प्रधान गुण था—शारगुल। सो वे तीन-तीन यन्त्र बजा सकते थे—कार्नेट, इसराज और चेलो। जब तब इसका परिचय भी मिल जाता था। सगीत के गान के सम्बन्ध म, मैं स्वय को सुराचार्य कह कर अभिमान नही कर सकता। परन्तु मरी राय म गाना उच्च अग की विद्या नही है। भाषा के अभाव म मनुष्य जिस समय गूँगा था, उसी समय गाना की उत्पत्ति हुई—उस समय मनुष्य विचार नही कर सकता था, इसीलिए चीत्कार करता था। आज भी जो मनुष्य आदिम अवस्था म हैं, व केवल चीखना ही पसन्द करते हैं। परन्तु दखा कि मेरे द्वैतदल म भी कम से कम चार लडके हैं, पहले नम्बर वाले का चेला बज उठत ही फिर गणितिक-न्यायशास्त्र के नव्यतम अध्याय म भी मन नही लगा पाते हैं।

मेरे दल म से भी अनेक लडके जब पहल नम्बर वाले की ओर झुक रहे थे, इसी समय मे अनिला ने एक दिन मुझसे कहा—'बगल के मकान से एक उपद्रव शुरू हो गया है, अब हम लोग इस जगह से किसी अन्य मकान मे चले जाएँ तो अच्छा

रहेगा।'

मैं बहुत खुश हुआ। अपने दल के लोगो से कहा—'देखो, स्त्रियो को कैसा एक सहज बोध होता है! इसीलिए जो सब वस्तुएँ प्रमाणयोग्य समझी जाती हैं, उसे वे लोग समझ ही नही पाती, परन्तु जिन सब वस्तुओ का कोई प्रमाण ही नही है, उन्हे समझने मे उनको तनिक भी देर नही होती।'

कन्हाईलाल ने हँसकर कहा—'जैसे पँचो'† ब्रह्मदैत्य, ब्राह्मण की पद धूलि का माहात्म्य, पतिदेवता की पूजा का पुण्य फल इत्यादि, इत्यादि।'

मैं बोला—'नही जी, यही देखो न, हम लोग इस पहले नम्बर वाले के आडम्बर को देखकर स्तम्भित हो गए हैं, परन्तु अनिला उसकी साज-सज्जा के भुलावे मे नही आई है।'

अनिला ने दो-तीन बार मकान बदलने की बात कही। मेरी इच्छा भी थी, परन्तु कलकत्ते की गली गली मे ढूढते फिरने जैसी लगन मुझ म नही थी। अन्त मे एक दिन शाम के समय देखा गया कि कन्हाईलाल एव सतीश पहले नम्बर म टेनिस खेल रहे हैं। उसके बाद जन-श्रुति सुनाई पडी, यति और हरेन पहले नम्बर मे सगीत की महफिल मे जाते हैं—एक तो हारमोनियम बजाता है एव दूसरा तबले की सगत करता है और अरुण ने भी वहाँ मजाकिया गान गा कर खूब प्रतिष्ठा पाई है। इन लोगो को मैं पाँच छ वर्षों से जानता हूँ, परन्तु इनम ये सब गुण थे, इसका तो मैंने सन्देह भी नही किया था। विशेषत मैं जानता था कि अरुण के प्रधान शौक का विषय है—तुलनामूलक धर्मशास्त्र। वह मजाकिया गानो का भी उस्ताद है, यह मैं कैसे समझता?

सच बात कहता हूँ, मैं इस पहले नम्बर वाले की मुह से जितनी अवज्ञा करता, मन ही-मन उतनी ही ईर्ष्या करता था—मैं चिन्तन कर सकता हूँ, सभी वस्तुओ का सार ग्रहण कर सकता हूँ बडी-बडी समस्याओ का समाधान कर सकता हूँ—मगर मानसिक सम्पत्ति से सिताशुमौलि को अपने समकक्ष समझने की कल्पना करना असम्भव था! परन्तु फिर भी मैं इस मनुष्य से ईर्ष्या करता हूँ! क्या, इस बात को अगर खुलकर कहूँ तो लोग हँसेंगे। सुबह के समय सिताशु एक बडे

---

†एक कल्पित देवता, जिसके असर से बच्चो को मृगी रोग हो जाने की बात कही जाती है।

घोडे पर चढकर घूमने निकलता—किस आश्चयजनक निपुणता के साथ वह लगाम खीचकर इस जानवर को वश मे रखता था ! इस दृश्य का मैं नित्य ही देखता और सोचता—'अहा, मैं यदि इसी तरह शान से घोडे को हाँक पाता। चतुराई नामक जो वस्तु मुझ मे बिल्कुल ही नहीं है, उस पर मुझे एक बडा गुप्त लाभ था। मैं गाने के सुरो को अच्छी तरह नही समझता, परन्तु खिडकी से अक्सर ही चुपचाप देखा था कि सिताशु इसराज बजा रहा है—इस यन्त्र के ऊपर उसका एक बाधाहीन सौदयमय अधिकार मेरे लिए आश्चयमय और मनो हर अनुभव होता। मेरे मन म आता कि वाद्य-यन्त्र मानो प्रेयसी नारी की भाँति उसे प्यार करता है—और अपने सभी सुरो को उसके चाहते ही सौंप देता है। चीज-वस्त, घर मकान जन्तु मनुष्य सभी पर सिताशु का यह प्रभाव एक बडे सौदय का विस्तार करता था। यह वस्तु अनिवचनीय थी, मैं इसे नितात दुलभ माने बिना नही रह पाता था। मैं सोचता—'पृथ्वी पर किसी से कोई प्राथना करना इस व्यक्ति के लिए अनावश्यक है, सब वस्तुएँ इसके पास स्वय ही आ पडेंगी, यह अपनी इच्छा से जहाँ भी जा बठेगा, वही उनका आसन भी पड जाएगा।

इसीलिए जब एक एक करके मेरे द्वैता में से अनेक पहले नम्बर में टेनिस खेलने व कसट बजाने लगे, उस समय स्वय स्थान त्याग के द्वारा इन लोभियो का उद्धार करने के अतिरिक्त और कोई उपाय ही मुझे ढूढे नही मिला। दलाल ने आकर खबर दी, मन के मुआफिक दूसरा मकान बरानगर-काशीपुर के पास एक जगह मिल सकता है। मैं उसके लिए राजी हो गया। उस समय सुबह के साढे नौ बजे थे। पत्नी को तैयार होने के लिए कहने गया, तो उसे भण्डारघर मे भी नही पाया, रसाईघर म भी नही। देखा, सोने के कमरे की खिडकी की पटरी पर सिर रखे हुए वह चुपचाप बैठी है। मुझे दखते ही वह उठ पडी। मैं बोला—परसा नये मकान म चलना होगा।

वह बोली—'और पन्द्रह दिन सब्र करो।'

जिज्ञासा की—'किसलिए?'

अनिला बोली—'सरोज की परीक्षा का परिणाम शीघ्र ही निकलेगा—उसके लिए मन उद्विग्न है, इन कुछ दिनो तक हिलना-डुलना अच्छा नही लगता।

अयान्य असख्य विषयो मे यही एक विषय था, जिसे लेकर अपनी पत्नी के साथ मैंने कभी बातचीत नही की थी। लिहाजा कुछ दिन मकान बदलना मुल्तवी रहा। इसी बीच खबर मिली कि सिताशु शीघ्र ही दक्षिण भारत घूमने जाएगा, अर्थात दो नम्बर के ऊपर से यह घनी छाया हट जाएगी।

अदृष्ट नाटक के पाँचवें अक का शेष भाग अचानक स्पष्ट हो उठता है। कल मेरी पत्नी अपने पिता के घर गई थी, आज लौट आने के बाद वे अपने कमरे का दरवाजा बन्द करके बैठ गइ। वे जानती थी कि आज रात मे हमारे दूतदल की पूर्णिमा का भोज है। इसीलिए परामश करने के हेतु उनके दरवाजे पर दस्तक दी। पहले कोई आहट नही मिली। पुकारा—'अनु!' कुछ देर बाद ही अनिला ने आकर दरवाजा खोल दिया।

मैंने जिज्ञासा की—'आज रात मे रसोई का प्रबन्ध सब ठीक तो है?'

उसने कोई जवाब न देकर सिर हिलाकर जताया कि है।

मैं बोला—'तुम्हारे हाथ की बनी मछली कचौडी और विलायती आमडा की चटनी उन लोगो को खूब अच्छी लगती है, उसे मत भूलना।'

यह कहकर बाहर आते ही देखा कि कन्हाईलाल बैठा है।

मैं बोला—'कन्हाई आज तुम लोग जरा जल्दी ही आ आना!'

कन्हाई अचरज मे भरकर बोला—'यह कैसी बात! आज हम लोगो की सभा होगी क्या?'

मैं बोला—'होगी क्यो नही?! सब तैयारी है—मैक्सिम गोर्की की नई कहानियो की पुस्तक, बेगसं के ऊपर रसेल की समालोचना, मछली की कचौडी, यही क्यो, आमडे की चटनी तक!'

कन्हाई अवाक् होकर मेरे मुह की ओर देखता रहा। क्षणभर बाद ही बोला—'अद्वैत बाबू, मैं कहता हूँ, आज रहने दो!'

अन्त म पूछने पर जाना कि मेरा साला सरोज कल शाम के समय आत्महत्या करके मर गया है। परीक्षा म वह पास नही हो सका था, इसीलिए विमाता से उसे बडी फटकार मिली थी—सहन न कर पाने के कारण गले मे चादर बाधकर मर गया।

मैंने जिज्ञासा की—'तुमने कहाँ से सुनी?'

वह बोला—'पहले नम्बर से!'

पहले नम्बर से। विवरण यह था—सन्ध्या के समय अनिला के पास जब खबर आई, तब वह गाडी बुलवाने की प्रतीक्षा किए बिना ही, अयोध्या को साथ लेकर सडक से ही गाडी किराए पर करके पिता के घर चली गई थी। अयोध्या द्वारा रात मे सिताशुमौलि ने इस खबर को पाते ही, उसी समय जाकर पुलिस को ठण्डा करके, स्वय श्मशान मे उपस्थित रह कर मृत देह का दाह सस्कार करा दिया था।

मैं घबराकर उसी समय अन्त पुर मे गया। मन मे सोचा था कि अनिला शायद दरवाजा बन्द करके, अपने सोने के कमरे मे आश्रय लिए होगी। परन्तु इस बार जाकर देखा कि भण्डार के सामने वाले बरामदे मे बैठी हुई, वह आमडे की चटनी की तयारी कर रही है। जब ध्यान से उसका मुह देखा, तब समझा कि एक रात मे ही उसका जीवन उलट पलट हो गया है। मैंने शिकायत करते हुए कहा—'मुझ से कुछ कहा क्यो नही?'

उसने अपनी दोना बडी बडी आँखें उठाकर एक बार मेरे मुह की ओर देखा —कोई जवाब नही दिया। मैं लज्जा से अत्यन्त छोटा हो गया। यदि अनिला कहती—'तुमसे कहने पर लाभ क्या था,' तब तो मुझे जवाब देने के लिए कुछ भी नही रहता। जीवन के इन सब उपद्रवो और ससार के सुख दु ख को लेकर किस तरह व्यवहार करना पडता है, मैं क्या उसके बारे म कुछ भी जानता हूँ?।

मैं बोला—'अनिल यह सब रहने दो, आज हमारी सभा नही होगी।'

वह बोली—'तुम लोगा की सभा हो या न हो, आज मेरा निमन्त्रण है।'

मैं मन म जरा आराम पाया। सोचा—अनिला का शोक उतना अधिक शायद नही है। सोचा कि मैं जो किसी समय उसके साथ बडे-बडे विषया पर बातें किया करता था, उसी से उसका मन बहुत कुछ निरासक्त हो आया है। यद्यपि सब बातें समझने योग्य शिक्षा एव शक्ति उसम नही थी, परन्तु फिर भी पर्सनल मगनेटिज्म नामक एक वस्तु तो है ही!

सन्ध्या के समय मेरे दूतदल के दो चार आदमी कम पड गय। कन्हाई तो आया ही नही। पहले नम्बर म जो लोग टेनिस के दल म शामिल हुए थे उनम से भी कोई नही आया। सुना कि कल सुबह की गाडी से सिताशुमौलि जा रहा है इसलिए य लोग वहाँ विदाई भोज खाने गए हैं। इधर अनिला ने आज जैसा भोज का आयोजन किया वसा और कभी नही किया था। यही क्या, मेरे जसे

बेहिसाबी व्यक्ति के भी मन मे यह बात आयी कि खच कुछ अधिक कर दिया गया है।

उस दिन खान-पान समाप्त कर, सभा भङ्ग होने म रात का एक डेढ बज गया। मैं थक कर उसी समय सोने चला गया। अनिला से जिज्ञासा की—'सोओगी नही ?'

वह बोली—'बतना को उठाना पडेगा।'

दूसरे दिन जब उठा, उस समय प्रात आठ बजे का समय होगा। सोने के कमरे म तिपाई के ऊपर जिस जगह मैं अपना चश्मा उतार कर रख देता था, उस जगह देखा कि मेरे चश्मे से दबा हुआ एक टुकडा कागज रखा है, उसम अनिला के हाथ की लिखावट थी—'मैं जा रही हूँ ! मुझे ढूढने की चेष्टा मत करना ! कोशिश करने पर भी ढूढे नही पा सकोगे।'

मैं कुछ समझ नही सका। तिपाई के ऊपर एक टिन का बक्स था—उसे खोल कर देखा—उसके भीतर अनिला के सभी गहने—यही क्या, उसके हाथ की चूडियाँ तक, केवल उसकी शख की चूडिया एव हाथ के लोहे[1] के अतिरिक्त—रखी थी। एक खाने मे तालियो का गुच्छा, अन्य खानो म कागज म लपेट हुए कुछ रुपये, चवन्नी, दुअन्नियाँ थी। अर्थात महीने के खच म से बचाकर अनिला के हाथ मे जो कुछ जमा हुआ था, उसका आखिरी पैसा तक वह रख गई थी। एक कापी में बासन कूसन, चीज बस्त की सूची एव धोबी के यहाँ जो कपडे गए थे, उनका सब हिसाब था। इनके साथ ही दूधवाले और मोदी की दूकान के देन का हिसाब और रुपये थे, केवल उसका स्वय का पता ठिकाना नही था।

इसी से समझ गया कि अनिला चली गई है। सारा घर उलट पलट करके देखा—अपनी ससुराल में पता लगाया—वहीं भी वह नही थी। किसी विशेष घटना के घटने पर, उसके सम्बन्ध में जैसे अचानक विशेष व्यवस्था करनी पडती है उसी तरह मैं भी कभी उस परिस्थिति के बारे में कुछ भी नही सोच पाया था। मेरी छाती के भीतर हाहाकार उठने लगा। अचानक पहले नम्बर की ओर ताक कर देखा, उस मकान का दरवाजा और खिडकिया बन्द थे। ड्योढी के पास

---

[1] बगाल में सधवा स्त्रियां सुहाग चिह्न के रूप मे शख की चूडियाँ एव लोह की एक चूडी पहनती हैं।

दरवानजी, हुक्के से तम्बाकू पी रहे थे। राजाबाबू सुबह होने से पहले ही चले गए थे। मन के भीतर अचानक छौंक सा लग गया। हठात् समझ में आया कि मैं जिस समय मन लगाकर नव्यतम न्याय की आलोचना कर रहा था, उसी समय मानव समाज का एक प्राचीनतम अध्याय—मेरे घर में जाल फैला रहा था। फ्लावेयर टॉल्सटाय तुर्गनेव आदि बड़े बड़े कहानी लेखकों की पुस्तकों में जब इस तरह की घटनाएँ पढ़ी थी उस समय बड़े आनन्द से सूक्ष्मातिसूक्ष्म करके उसकी तत्वकथा का विश्लेषण करके देखा था। परन्तु अपने ही घर में यह सुनिश्चित रूप से घट जाएगा—इसकी तो किसी दिन स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी।

पहले धक्के को सँभाल कर, मैंने तत्वज्ञानी की भांति सम्पूर्ण मामले को यथोचित हल्का करके देखने की चेष्टा की। जिस दिन मेरा विवाह हुआ था, उस दिन की बात को याद करके सूखी हँसी हँसा। सोचा—मनुष्य कितनी आकांक्षा, कितने आयोजन, कितने आवेग का अपव्यय करता रहता है! कितने दिन, कितनी रातें कितने वर्ष निश्चिन्त मन से कट गए, स्त्री नामक एक सजीव पदार्थ मेरे पास भी है यही सोचकर आँखें बन्द कर रखी थी। इसी बीच आज अचानक आँखें खोलकर देखता हूँ। बुदबुद फट गया है। अनिला गई तो चली जाए—परन्तु संसार में सभी तो बुदबुद नहीं हैं! युग-युगान्तर के जन्म मृत्यु का अतिक्रम करके टिकी रहने वाली वस्तुओं को क्या मैंने पहचानना नहीं सीखा है?

परन्तु देखा कि इस अचानक आघात से मेरे भीतर बैठा आधुनिककाल का ज्ञानी मूर्च्छित होकर गिर पड़ा और कोई आदिकाल का प्राणी जग उठकर भूख से रोता हुआ फिरने लगा। बरामदे की छत पर चहलकदमी करते करते, सूने मकान को घूरते घूरते, अन्त में जिस जगह खिड़की के पास कितनी ही बार अपनी स्त्री को चुप होकर अकेले बैठे हुए देखा था, एक दिन अपने उसी सोने के कमरे में जाकर, पागल की भाँति सारी वस्तुओं को उलटने-पलटने लगा। अनिला के केश बाँधने के दर्पण की दराज खोलते ही, अचानक रेशम के लाल फीते में बँधी चिट्ठियों की एक गड्डी बाहर निकल पड़ी। चिट्ठियां पहले नम्बर से आई थी। मेरी छाती जल उठी। एक बार मन में हुआ कि सबको जला डालूं। परन्तु जहां बड़ी वेदना होती है वहीं भयंकर खिंचाव भी होता है! इन चिट्ठियों को पूरा पढ़े बिना रहने की सामर्थ्य मुझमें नहीं थी।

इन चिटिठियो को पचासो बार पढा। पहली चिट्ठी तीन चार टुकडे करके फाड दी गई थी। लगा कि पाठिका ने पढकर उन्ह फाड डाला था, मगर फिर यत्नपूर्वक एक कागज के ऊपर गोद लगाकर जोडकर रख दिया है। वह चिट्ठी यह थी—

'मेरी यह चिटठी बिना पढे ही यदि तुम फाड डालो, तो भी मुझे दु ख नही होगा। मुझे जो बात कहनी है, वह कहनी ही पडेगी।

'मैंन तुम्ह देखा है। इतन दिनो से इस पृथ्वी पर आखें गडाए घूम रहा हूँ, परन्तु देखने योग्य मुख का दशन मेरे जीवन की इस वत्तीस वष की उम्र मे पहली वार हुआ है। मेरी आँखो के ऊपर नीद का पर्दा खिचा हुआ था, तुमने सोन की सलाई घुला दी है—आज मैंने नव जागरण के भीतर से तुम्ह देखा है, तुम *जो कि स्वय अपन सष्टिकर्त्ता के परम विस्मय का धन हो,* उसी ने तुमको रचा है। मुझे जो पाना था वह पा लिया, और कुछ नही चाहता, केवल तुम्हारी तारीफ तुम्हें सुनाना चाहता हूँ। यदि मैं कवि होता, तो अपनी तारीफ तुम्हारे पास चिट्ठी मे लिखकर भेजने की आवश्यकता नही हाती, छन्द मे भरकर सम्पूण ससार के कण्ठ मे उसे प्रतिष्ठित कर जाता। मेरी इस चिटठी का कोई उत्तर नही दोगी, जानता हूँ—परन्तु मुझे गलत मत समझना! मैं तुम्हारी कोई क्षति कर सकता हूँ, ऐसा सन्देह भी मन मे न रखकर, मेरी पूजा को चुपचाप ग्रहण करो! मरी इस श्रद्धा को यदि तुम पसद कर सकी, तो उससे तुम्हारा भी भला होगा। मैं कौन हूँ—यह बात लिखने की आवश्यकता नही है, परन्तु निश्चय ही वह तुम्हार मन से छिपी नही रहेगी!'

इस तरह की पच्चीस चिट्ठियाँ थी। इनम से किसी चिट्ठी का उत्तर अनिला ने दिया था, इन चिट्ठियो के भीतर इसका कोई सकेत नही था। यदि दिया होता तो उसी समय बेसुरा वज उठता—*अथवा उस स्थिति म सोने की* सलाई के जादू को एकदम मिटाकर यह स्तवगान वद हो जाता।

परन्तु यह कैसा आश्चर्य है! सिताशु ने जिसे क्षण भर मे ही देख लिया था, आज आठ वष की घनिष्टता के बाद भी, इन पराई चिट्ठियो के भीतर से मैंने उसे पहली बार देखा। मेरी आँखो के ऊपर नींद का कितना मोटा पर्दा है सो नहीं जान पाया! पुरोहित के हाथो अनिला को मैंने पाया था, परन्तु उसके विधाता के हाथ से उसे ग्रहण करने का मूल्य मैंने कुछ भी नही दिया। मैंन अपने

द्व तदल को एव नव्ययाय को उसकी अपेक्षा अधिक बडा करके देखा था। घर निम मैंन कभी नही दखा एक पल के लिए भी नही पाया, उसे कोई और यदि अपन जीवन का उत्सग करके पा सके, तब क्या वह कर किसी के पास अपने नुक्सान की नालिश करूँगा!

अतिम चिटठी यह थी—

'बाहर से मैं तुम्हारा कुछ नही जानता, परन्तु हृदय की आर से मैंन देखा है तुम्हारी वेदना। इसी जगह मेरी बडी कठिन परीक्षा है। मेरी यह पुरुष का भुजाएँ निश्चेष्ट नही रहना चाहती। इच्छा होती है कि स्वग मत्य का सभी शासन विदीण करके, जीवन की व्यथता स तुम्हारा उद्धार करके ले जाऊँ। उसके बाद यह भी मन म होता है कि तुम्हारा दु ख ही तुम्हारे अन्तयामी का आसन है। उसे हरण करने का अधिकार मुझे नही है! कल सुबह तक की मोहलत ली है। इस बीच यदि कोई देववाणी मेरी इस द्विधा का मिटा देगी, तो फिर जो भी होना है वह सब कुछ हा जाएगा। वासना की प्रबल हवा हमारे मागदशक दीपक को बुझा देगी। इसीलिए मैं मन को शान्त रखूगा—एकाग्र मन से यही मन्त्र जपूगा कि तुम्हारा कल्याण हो!'

समझा जा सकता था कि द्विधा अब दूर हो गई है—दोना व्यक्तिया का पथ एक होकर मिल गया है। इस बीच सिताशु की लिखी यह चिटठी मेरी ही चिट्ठी हो गई—यह आज मेरे ही प्राण का स्तवमन्त्र है!

बहुत समय बीत गया। पुस्तकें पढना अब अच्छा नही लगता। अनिला को एक बार किसी तरह देखने के लिए मन के भीतर ऐसी वदना जाग गई कि किसी तरह भी मन को स्थिर नही रख सका। पता लगाने पर मालूम हुआ कि सिताशु उस समय मसूरी पहाड पर था।

वहा जाकर सिताशु को अनेक बार सडक पर घूमते हुए देखा, परन्तु उसके साथ तो अनिला को देखा नही। भय हुआ कि कही उसे अपमानित करके इसने त्याग न दिया हो। मैंने और न ठहर पाकर, एक बार जाकर उससे भेंट की। सब बातो को विस्तारपूवक लिखने की आवश्यकता नही है। सिताशु बोला—'मैंने जीवन मे उनकी केवल एकमात्र चिटठी पाई है—वह यह देखिए।'

यह कहकर सिताशु ने अपनी जेब से एक छोटा सा मीनाकारी किया हुआ

सोने का काड केस खोलकर, उसके भीतर से एक टुकडा कागज निकाल कर दे दिया। उसम लिखा था—'मैं जा रही हूँ, मुझे ढूढने की चेष्टा मत करना। करने पर भी ढूढे नही पा सकोगे।'

वही अक्षर वही लिखावट, वही तारीख, वही सब कुछ, एव जिस नीले रग के कागज का आधा हिस्सा मेरे पास था, यह टुकडा भी उसी का शेष आधा था।

वर और कन्या

[१]

इससे पूव प्रजापति ब्रह्मा कभी भी मेर मस्तिष्क मे नही बैठे थे, केवल एक बार वे मरे मानस-पद्म म वठे थे। उस समय मेरी उम्र सोलह वप थी। उसके बाद से, कच्ची नीद म चौंका देन से जिस तरह नीद फिर नही आना चाहती, मेरी वही दशा हुई। मेरे बधु-बाधवो म से कोई कोई दार परिग्रह के व्यापार मे द्वितीय, यही क्यो ततीय श्रेणी म भी प्रामोशन पा चुके थे, मगर मैंने कौमाय की लाम्ट बेंच पर बैठकर, सून घर-ससार की कडी काठ गिनते हुए समय बिता दिया।

मैंन ,चौदह वप की उम्र म एन्ट्रेस पास की थी। उस समय विवाह अथवा एट्रेस परीक्षा म उम्र का बधन नही था। मैंन कभी पाठ्य पुस्तक निगली नहीं थी, इसीलिए शारीरिक अथवा मानसिक अजीण रोग मुझे भुगतना नही पडा। चूहा जिस तरह दाँत गडाने योग्य वस्तु पाते ही उसे काट कूट डालता है, फिर वह चाहे खाद्य हो या अखाद्य ही हो —बचपन से ही उसी तरह छपी हुई पुस्तक देखते ही उसे पढ डालने का मेरा स्वभाव था। ससार म पढन लायक पुस्तकों की अपेक्षा न पढन लायक पुस्तको की सख्या बहुत अधिक है, इसीलिए मेरी पुस्तका के सौर-जगत म,

स्कूल-पाठ्य पृथ्वी की अपेक्षा बेस्कूल पाठ्य सूय चौदह लाख गुना बडा था। फिर भी, मेरे सस्कृत-पण्डित महाशय की भयकर भविष्यवाणी के रहते हुए भी, मैं परीक्षा में पास हो गया।

मेरे पिता थे डिप्टी मैजिस्ट्रेट। उस समय हम लोग थे सातक्षीरा† मे, या जहानाबाद म अथवा इसी तरह की किसी एक जगह म। पहले से ही कह रखना अच्छा है कि देश-काल एव पात्र के सम्बन्ध मे मेरे इस इतिहास में जो कोई स्पष्ट उल्लेख रहेगा, वह सभी सफेद झूठ है, जिन लोगो म रसबोध की अपक्षा कौतूहल अधिक है, उन्हें निराश होना पडेगा। पिताजी उस समय तहकीकात म निकल गये थे। माँ का एक व्रत था, दक्षिणा एव भोजन-कराने के लिए उन्हे ब्राह्मण की आवश्यकता थी। इस तरह के पारमार्थिक प्रयोजन म हमार पण्डितजी थे माँ के प्रधान सहायक। इसलिए माँ उनके प्रति विशेष कृतज्ञ थी, यद्यपि पिताजी के मन का भाव ठीक उससे उल्टा था।

आज भोजन के बाद दक्षिणा की जो व्यवस्था हुई, उसम मैं भी तालिका भुक्त (सूची मे रखा गया) हुआ। उस सम्बन्ध म जो वार्तालाप हुआ था, उसका मम यही था—कि अब मेरा कलकत्ते के कॉलेज म जान का समय हो गया था। ऐसी अवस्था म पुत्र वियोग का दुख दूर करन के लिए एक अच्छे उपाय का अवलम्बन करना जरूरी था। यदि कोई बच्चा माँ की गोद के समीप रहे, तो उसे बडा करके, लालन-पालन करके उनका दिन कट सकता था। पण्डितजी की लडकी काशीश्वरी इस काम के लिए उपयुक्त थी—कारण, वह शिशु भी थी, सुशीला भी थी और कुल शास्त्र के गणित से उसके साथ मेरा अक अक मिलता था। इसके अतिरिक्त ब्राह्मण की कन्या के भार से मुक्त करन के पारमार्थिक फल का भी लोभ था।

अतएव माँ का मन विचलित हो गया। लडकी को एक बार देखना आवश्यक है ऐसा आभास देते ही पण्डितजी ने कहा—उनका 'परिवार' कल रात मे ही लडकी को लेकर यहाँ आ पहुँचा है। माँ के पसन्द करने म देर नही हुई। माँ बोली—लडकी सुलक्षणा है—अर्थात्, कोई खास सुन्दरी न होने पर भी सान्त्वना का कारण है।

---

† नगर का नाम।

बात होते होते मेरे कान मे पडी। जिन पण्डिजी के धातु रूप से मैं बराबर डरता आया था, उन्ही की कन्या के साथ मेरे विवाह का सम्बन्ध—इसी विचित्रता न मेरे मन को पहले ही प्रबल वेग से आकर्षित कर लिया। रूपकथा की कहानी की भांति, हठात् सुबन्त प्रकरण मानो अपने समस्त अनुस्वार विसर्ग को छोड-छाड कर एकदम राजकन्या हो उठा।

एक दिन शाम को मा ने मुझे अपने कमरे मे बुलाकर कहा—'सुनू, पण्डित जी के घर स आम और मिठाई आई है, खाकर देख।'

माँ जानती थी कि मुझे पच्चीस आम खा लेने देने पर और पच्चीस द्वारा उसकी पादपूर्ति करते ही मेरा छन्द पूरा होता था। इसीलिए उन्होने रसना के सरस पथ से मेरा आह्वान किया। काशीश्वरी उनकी गोद मे बैठी थी। स्मृति बहुत कुछ अस्पष्ट हो आई है, परन्तु इतना याद है कि रङ्गीन फीते स उसका जूडा बँधा हुआ था और शरीर पर एक साटिन की जकेट थी—वह नीली और लाल लेस और फीता का एक प्रत्यक्ष प्रलाप थी। जहा तक याद आ रहा है—रग सावला भौंह खूब घनी एव दोनो आँखें पालतू प्राणी की भाति बिना सङ्कोच के ताक रही थी। मुह का बाकी अश कुछ भी याद नही आ रहा—अस्पष्ट सा याद रह गया है। और कुछ भी हो वह देखने म निहायत भली आदमिन जसी थी।

मेरी छाती भीतर से फूल उठी। मन ही मन समझा कि यह फीते से बँधी वेणी वाली, जकेट पहने हुए सामग्री सोलहो आना मेरी है, मैं उसका स्वामी हूँ, मैं उसका देवता हूँ। अन्य सभी दुलभ सामग्रिया के लिए साधना करनी पडती है, केवल इसी वस्तु के लिए नही, मेरी छोटी अँगुली हिलाने से ही सिद्धि हो जाएगी, विधाता यही वर देने के लिए मुझे साधे फिर रहे हैं। माँ को तो मैं बराबर देखता आ रहा था, स्त्री का मतलब क्या समझा जा सकता है उसे अपने इसी सूत्र से मैंने जाना था। देखा था कि पिताजी अन्य सभी व्रता से खफा थे, परन्तु सावित्री व्रत के समय वे मुह से कुछ भी कहे, मन ही मन विशेष रूप से एक आनन्द का अनुभव करते थे। माँ उन्हे प्यार करती थी, यह मैं जानता था, परन्तु किससे पिताजी नाराज होगे, किससे उन्हे विरक्ति होगी—इन सबसे मा जो बुरी तरह डरा करती थी उसी के रस का पिताजी अपने सम्पूर्ण पौरुष से, सबसे अधिक उपभोग करते थे। पूजा से देवताओ का शायद खास कुछ आता-जाता

नहीं, क्योकि वह उनका वध हक होता है। परन्तु मनुष्य का शायद वह अवैध प्राप्य होता है, इसीलिए इसका लोभ उन्हे लापरवाह बना देता है। उस बालिका के रूप गुण का आकर्षण उस दिन मेरे ऊपर नही पडा, परन्तु मैं पूजनीय हूँ, यह बात उस चौदह वर्ष की उम्र मे भी मेरे पुरखो के रक्त में उफन उठी। उस दिन खूब गौरव के साथ मैंने आम खाये। यही क्यो, गर्व के कारण तीन आम दाने में बाकी छोड दिए, जो मेरे जीवन म कभी नही हुआ था, और फिर शाम तक का समय उसके बारे मे सोचते हुए ही बीता।

उस दिन काशीश्वरी को पता नही चला कि मेरे साथ उसका सम्बन्ध किस श्रेणी का है—परन्तु घर जाते ही शायद वह जान गई। उसके बाद से जब भी उससे भेंट होती, वह घबराकर छिपने का स्थान भी ढूढ लेती। मुझे देखकर उसकी यह घबराहट मुझे खूब अच्छी लगती। मेरा आविर्भाव ससार की किसी एक जगह म, किसी एक व्यक्ति पर एक प्रबल प्रभाव का सचार करता है—यह जव-रासायनिक तथ्य मेरे लिए बडा मनोरम था। मुझे देखकर भी कोई भय करता है अथवा लज्जा करता है, अथवा कोई कुछ करता है वह अनुभव बडा अपूर्व था। काशीश्वरी अपने भागने के द्वारा ही मुझे जता जाती कि ससार म वह विशेष भाव से, सम्पूर्ण भाव से एव निगूढ भाव से मेरी ही है!

इतने समय की निरर्थकता से, हठात् एक पल म ऐसे एकान्त गौरव का पद प्राप्त करके, कुछ दिनो तक मेरे माथे के भीतर रक्त झाँ झाँ करने लगा। पिताजी जिस तरह से माँ के कर्तव्य अथवा रसोई की अथवा व्यवस्था की त्रुटि को लेकर उन्हे सर्वदा व्याकुल बनाये रहते थे, मैं भी मन-ही मन उसी तरह की तस्वीर के ऊपर चित्रकारी का अभ्यास करने लगा। पिताजी के किसी लक्ष्य का साधन करते समय माँ जिस तरह की सावधानी से, अनेक प्रकार के मनोहर कौशल से काम का उद्धार करती थी—मैं कल्पना म काशीश्वरी को भी उसी तरह सब कुछ करते देखने लगा। बीच बीच में मन ही मन शाउसेन से एव अचानक ही मोटे अङ्क वाले बैंक-नोट से आरम्भ करके हीरे के गहने तक दान करना आरम्भ कर दिया। किसी किसी दिन भात खाने के लिए बैठने पर—उसका खाना ही नही हुआ है एव खिडकी के किनारे बैठकर, आँचल के छोर से वह आख का पानी पोछ रही है—यह करुण दृश्य भी मैंने मन की आँखो से देखा, एव यह मेरे लिए कितना शोचनीय अनुभव हुआ था, उसे कह नहीं सकता! छोटे बच्चो की आत्मनिभरता

के सम्बन्ध में पिताजी अत्यन्त सतर्क थे।

अपने कमरे का ठीक करना, अपन कपडे-लत्ता को ठीक से रखना—सभी कुछ मुझे अपन ही हाथों स करना पडता था। परन्तु मेर मन के भीतर—गृहस्थी के जो चित्र स्पष्ट रेखाओ में उभर उठे थे, उनमें से एक नीचे लिखे देता हूँ। अधिक क्या कहा जाए, मेर पतन इतिहास में ठीक इसी तरह की घटना पहले एक दिन घटी थी, इस कल्पना में मेरी आरिजिनलिटी कुछ भी नहीं थी। चित्र यह था—रविवार के मध्याह्न में भोजन के बाद मैं खाट के ऊपर तकिय का सहारा लेकर पाँव फलाये हुए, अर्द्धनिद्रित अवस्था में समाचार पत्र पढ़ रहा था। हाथ में हुक्के की निगाली थी। हल्की तन्द्रा में निगाली नीचे गिर पडी। बरामदे में बैठी हुई काशीश्वरी धोबी को कपडे दे रही थी। मैंने उसे पुकारा। उसने झटपट दौडते हुए आकर मेरे हाथ में निगाली दे दी।

मैंने उससे कहा—'देखो, मेर बैठने के कमरे में, बाइ ओर वाली आलमारी के तीसरे खान में, नील रग की जिल्द वाली एक मोटी अँग्रेजी की पुस्तक रखी है, उसे ले आओ तो।' काशी ने एक नीले रग की पुस्तक ला दी। मैं बोला—'ओह, यह नहीं, वह इसस मोटी है, और उसकी पश्त पर सुनहरे अक्षरो म नाम लिखा है। इस बार वह एक हरे रग की पुस्तक ले आई—उसे मैं धप् से फश के ऊपर पटक कर नाराज हो उठा। उस समय काशी का मुह इतना सा निकल आया एव उसकी आखें छलछला उठी। मैंने खुद जाकर देखा कि तीसरे खाने म पुस्तक नहीं है वह है पाँचवें खाने मे। पुस्तक को हाथ म लेकर चुपचाप बिछौने पर आ सोया परन्तु काशी स अपनी भूल की बात नही कही। वह सिर झुकाये, उदास होकर धोबी को कपडे देने लगी एव—निबु द्धिता के दोष से पति के विश्राम म व्याघात किया—इस अपराध को किसी तरह भी नही भूल पाई।

पिताजी किसी डकैती की तहकीकात कर रहे थे, और मेरे दिन इस तरह से बीत रहे थे। इधर मेरे बारे मे पण्डितजी का व्यवहार और भाषा एक पल मे कर्तृ वाच्य से भाववाच्य म आ पहुँची और निश्चय ही वह सद्भाववाच्य थी।

इस बीच डकैती की तहकीकात खत्म हो गई पिताजी घर लौट आये। मैं जानता था कि मा धीरे धीरे समय देख कर, घूम फिर कर, पिताजी की विशेष प्रिय सब्जी रसोई के साथ साथ थोडा थोडा करके, सहनीय बात उठा कर यह

बात वहन के लिए तैयार होगी। पण्डितजी को अर्थलोलुप कह कर पिताजी घणा करते थे, सो माँ अवश्य ही पहले पण्डितजी की मीठे ढग से निन्दा मगर उनकी पत्नी और पुत्री की भरपूर प्रशसा करके बात को आरम्भ करती। परन्तु दुर्भाग्यवश पण्डितजी की आनन्दित प्रगल्भता से बात चारो ओर फैल गई थी। विवाह पक्का ही है, दिन मुहूर्त देखे जा रहे है—यह बात उन्हाने किसी को भी जताये बिना नही छोडी थी। इतना ही क्यो, विवाह के समय कुछ दिना के लिए सरिश्तदार बाबू के पक्के दालान की उन्हें आवश्यकता होगी—यथास्थान यह बात भी उन्हाने पक्की कर रखी थी। इस शुभ कम मे सभी लोग उनकी यथा-साध्य सहायता करन के लिए तैयार हा गय थे। पिताजी की अदालत के वकीलो का दल—चन्दा करके विवाह का खच उठाने के लिए भी तैयार था। स्थानीय एन्ट्रेस-स्कूल के सेक्रेटरी वीरेश्वर बाबू का तीसरा लडका तीसरी क्लास मे पढता था, उसने चाँद और कुमुद के रूपक का आधार बनाकर, इसी बीच इस विवाह के सम्बन्ध मे—त्रिपदी छन्द म एक कविता लिखी थी। सेक्रेटरी बाबू उस कविता को लेकर, राह-घाट मे जिसे पाते, उसी को पकड कर सुनान लगते थे। लडके के सम्बन्ध मे गाँव के लोग बडे आशान्वित हो उठे थे।

लिहाजा लौटते ही बाहर के लोगा से पिताजी को यह शुभ सम्वाद प्राप्त हो गया। उसके बाद माँ का रोना, घर के लोगा का डर जाना, नौकरो पर अकारण जुर्माना, इजलास म बडी तेजी से मामलो का डिसमिस होना एव प्रचण्ड तेजी से दण्ड दिया जाना, पण्डितजी की पदच्युति एव रेशमी फीते से बँधी वेणी सहित काशीश्वरी को लेकर उनका अन्तर्धान होना—एव छुट्टिया समाप्त होने स पहले ही, माता के सग से अलग करके मेरा जबदस्ती कलकत्ते को निर्वासन आदि हुआ। मेरा मन फटी हुई फुटबॉल की तरह पिचक गया—आकाश आकाश म, हवा के ऊपर ही उसकी उछल-कूद एकदम बन्द हो गई।

[२]

मेरे परिणय के माग म आरम्भ मे ही यह विघ्न हुआ—उसके बाद से दिन प्रतिदिन मेरे प्रति प्रजापति का पक्षपात व्यथ होन लगा। उसका विस्तत विवरण देने की इच्छा नही है—अपनी इस विफलता के इतिहास के सिफ दो-एक सक्षिप्त नोट छोड जाऊँगा। बीस वष की उम्र स पहले ही मैं पूरे सयम से

एम० ए० परीक्षा पास करके, आँखो पर चश्मा लगा कर एव मूछ की रखाओ को ताव देने योग्य करके निकल आया था। पिताजी उस समय रामपुरहाट या नोआखाली, या बारासात, अथवा इसी तरह की किसी जगह म थे। इतन दिन तो शब्द सागर का मन्थन करके डिग्री रत्न प्राप्त किया गया था, अब अथ सागर का मन्थन करन की बारी थी। पिताजी न अपन बडे बडे पैट्रन साहबा का स्मरण करने पर देखा कि उनमे जा सबसे बडे सहायक थे, व तो परलाक म हैं, उनकी अपेक्षा जो कुछ कम थे वे पेंशन लेकर विलायत म हैं, जो और भी कम जार थे वे पजाब म स्थानान्तरित हो गय हैं और जो बगाल म बाकी ह, व अधिकाशत उम्मदवारी के प्रारभ म ही आश्वासन दते हैं, परन्तु उपसहार म उसे समाप्त कर देते हैं। मेरे पितामह जिस समय डिप्टी थे, उस समय सरक्षका का बाजार ऐसा कसा हुआ नही था, इसीलिए उस समय नौकरी स पेंशन एव पेंशन से नौकरी, एक ही वश मे—नाव के आवागमन की तरह चलती रहती थी। अब दिन खराब हैं इसीलिए पिताजी जिस समय उद्विग्न हाकर साच रह थे कि उनके वशज गवनमट आफिस के उच्च खान स सौदागरी आफिस के नीचे हिस्से म पतित हो या नहीं इसी बीच एक धनी ब्राह्मण की एकमात्र कन्या उनके नोटिस मे आई। ब्राह्मण कन्ट्रक्टर थ उनके अर्थागम का माग प्रकट भूतल की अपेक्षा अदृश्य रसातल की ओर ही जाता था। व उस समय बडे दिन के उपलक्ष्य मे सतर और अन्यान्य उपहार सामग्री यथायोग्य पात्रा को वितरित करन म व्यस्त थे, इसी बीच उनके मुहल्ले से मेरा अभ्युदय हुआ। पिताजी का मकान था, उनके मकान के सामन ही बीच म केवल एक सडक थी। अधिक क्या कहा जाए डिप्टी का एम० ए० पास लडका कन्यादानी के लिए खूब अनन्त फलदायी था। इसीलिए कन्ट्रक्टर बाबू मेरे प्रति लालायित हो उठे थे। उनकी भुजाए बहुत लम्बी थी, यह परिचय पहले ही दे चुका हूँ—अन्तत वे भुजाएँ डिप्टी बाबू के हृदय तक अनायास ही पहुँच गइ। परन्तु मेरा हृदय उस समय और भी ऊपर था।

कारण, मेरी उम्र उस समय बीस के आस पास थी, उस समय विशुद्ध स्त्री-रत्न के अतिरिक्त अन्य किसी रत्न के प्रति मुझे कोई लोभ नही था। केवल यही नही, उस समय भी भावुकता की दीप्ति मेरे मन मे उज्ज्वल थी। अर्थात सह धर्मिणी शब्द का जा अथ मेरे मन मे था, वह अथ बाजार म प्रचलित नहीं था। वतमान काल म हमारे देश म—गृहस्थी चारों ओर से सकुचित है, मनन चिंतन

के समय मन को ज्ञान और भाव के उदार क्षेत्र मे व्याप्त करके रखना और व्यवहार के समय उसे गृहस्थी के अत्यन्त छोटे माप मे कृश करके लाना यह मैं मन ही मन सहन नही कर पाता था। जिस स्त्री को मैं आदश के क्षेत्र की सगिनी बनाना चाहता था, वह स्त्री घर-गृहस्थी की फौज म पाव की बेडी होकर रह एव अपन चलने फिरने की झकार स मुझे पीछे की ओर खीचे रहे, ऐसा दुराग्रह स्वीकार कर लेने मे मुझे नाराजगी थी। असल बात यह है कि हमारे देश के प्रहसन मे जो लोग आधुनिक के रूप मे विद्रूप करके कॉलेज स नय नय निकले हात ह, मैं उसी तरह का स्वच्छन्द आधुनिक हो उठा था। हमार समय म वह आधुनिकता का दल, आजकल की अपेक्षा बहुत अधिक था। आश्चय यही था कि व लोग सचमुच विश्वास करत थे, कि समाज को मान कर चलने म दुगति है एव उसे अपने पीछे खीच कर चलाने मे ही उन्नति है।

इस प्रकार मैं श्रीयुत सनत्कुमार, एक बलशाली कन्या के पिता की रुपया से भरी हुई थैली के सामन आ पडा। पिताजी बोले—शुभस्य शीघ्रम्। मैं चुप बना रहा, मन ही मन सोचा कि जरा देख सुन समझ-सोच लू। आख-कान खुले रखे—परन्तु थोडा सा देखा और बहुत सा सुना गया। लडकी गुडिया की तरह छोटी और सुदर है—वह स्वाभाविक नियम स तैयार हुई है, ऐसा उस देखकर नही लगता—न जान किसने उसके प्रत्यक बाल को सँवारकर, उसकी भौहा को आँककर, उम हाथ म लेकर बनाया है। वह सस्कृत भाषा में गगा की स्तुति जुबानी सुना सकती है। उसकी मा पत्थर के कोयले तक गगाजल से धान के बाद रसोई बनाती है। धरती माता नाना जातियो को धारण करती हैं, ऐसा कहा जाता है, परतु पृथ्वी से सम्पश के सम्बन्ध म वे सदैव सकुचित रहती हैं, उनका अधिकाश व्यवहार पानी के साथ ही रहता है, क्योकि जलचर मछलियाँ मुसलमान वशीय नही हैं एव जल में रहने के कारण उन्हे प्यास उत्पन्न नही होती। उनके जीवन का सवप्रधान काय अपने शरीर को, घर को, कपडे लत्ते, हाँडी-मटकी, खाट पलग, बासन-कूसन का शोधन एव माजन करना है। उन्हे ये सब कृत्य समाप्त करने में ढाई बज जाया करते हैं। अपनी लडकी को उन्हान अपन हाथो से ऐसा परिशुद्ध किया है कि उसका निजी मत अथवा निजी इच्छा नामक कोई झझट नही है। किसी व्यवस्था में कितनी ही असुविधा हो, उसका पालन करना लोगो के लिए सहज होता है, यदि उसका कोई सगत कारण उन्हे समया

एम० ए० परीक्षा पास करके, आँखो पर चश्मा लगा कर एव मूछ को रखाआ को ताव देने योग्य करके निकल आया था। पिताजी उस समय रामपुरहाट या नोआखाली, या बारासात, अथवा इसी तरह की किसी जगह म थे। इतने दिन तो शब्द सागर का मन्थन करके डिग्री रत्न प्राप्त किया गया था अब अर्थ सागर का मन्थन करने की बारी थी। पिताजी ने अपने बड़े बड़े पटन साहबा का स्मरण करने पर देखा कि उनके जो सबसे बड़े सहायक थ व तो परलोक म हैं, उनकी अपेक्षा जो कुछ कम थे वे पेंशन लेकर विलायत म ह, जो और भी कम जोर थे व पजाब म स्थानान्तरित हो गय हैं और जा बगाल म बाकी ह, व अधिकाशत उम्मेदवारी के प्रारभ म ही आश्वासन देते हैं, परन्तु उपसहार म उसे समाप्त कर देते हैं। मेरे पितामह जिस समय डिप्टी थे, उस समय सरकार का बाजार ऐसा कसा हुआ नही था, इसीलिए उस समय नौकरी स पेंशन एव पेंशन से नौकरी, एक ही वश म—नाव के आवागमन की तरह चलती रहती थी। अब दिन खराब हैं इसीलिए पिताजी जिस समय उद्विग्न होकर सोच रह थे कि उनके वशज गवनमट-आफिस के उच्च स्थान से सौदागरी आफिस के नीचे हिस्से म पतित हो या नहीं इसी बीच एक धनी ब्राह्मण की एकमात्र कन्या उनके नोटिस म आई। ब्राह्मण कन्ट्रैक्टर थ उनके अर्थागम का माग प्रकट भूतल की अपेक्षा अदृश्य रसातल की ओर ही जाता था। वे उस समय बड़े दिन के उपलक्ष्य म सतरे और अन्यान्य उपहार सामग्री यथायोग्य पात्रो को वितरित करन म व्यस्त थे, इसी बीच उनक मुहल्ले से मेरा अभ्युदय हुआ। पिताजी का मकान था, उनके मकान के सामने ही, बीच म केवल एक सड़क थी। अधिक क्या कहा जाए, डिप्टी का एम० ए० पास लड़का कन्यादानी के लिए खूब अनन्त फलदायी था। इसीलिए कन्ट्रैक्टर बाबू मेरे प्रति लालायित हो उठे थे। उनकी भुजाएं बहुत लम्बी थी यह परिचय पहले ही दे चुका हूँ—अन्तत वे भुजाएँ डिप्टी बाबू क हृदय तक अनायास ही पहुँच गइ। परन्तु मेरा हृदय उस समय और भी ऊपर था।

कारण, मेरी उम्र उस समय बीस के आस पास थी उस समय विशुद्ध स्त्री रत्न के अतिरिक्त अन्य किसी रत्न के प्रति मुझे कोइ लोभ नही था। केवल यही नही, उस समय भी भावुकता की दीप्ति मेरे मन म उज्ज्वल थी। अर्थात सह धर्मिणी शब्द का जो अर्थ मेरे मन म था वह अर्थ बाजार म प्रचलित नही था। वतमान काल मे हमारे देश मे—गृहस्थी चारो ओर से सकुचित है मनन चिंतन

अतिरिक्त न्याय शास्त्र के जोर से किसी ने कभी सफलता प्राप्त की हो, यह मैंने नही देखा है। कुतर्क की अग्नि में सगत-युक्ति कभी भी पानी की तरह नही, अपितु तेल की तरह काम करती है। पिताजी न सोच रखा था कि उन्होने दूसरे पक्ष को वचन दिया है—विवाह के औचित्य के सम्बन्ध में इससे अधिक बडा प्रमाण और कुछ भी नही है। अथच, यदि मैं उन्ह स्मरण करा दता कि पडितजी को माँ ने भी एक दिन वचन दिया था, फिर भी उस बात से केवल मेरा विवाह ही रुक गया हो—वही नही, पण्डितजी की जीविका भी उसी के साथ सहमरण को प्राप्त हो गई—तब तो इस बार म एक फौजदारी छिड जाती। बुद्धि विचार एव व्यक्तिगत रुचि की अपेक्षा शुचिता, मन्त्र तन्त्र, क्रिया कर्म आदि ही अधिक अच्छे होते हैं, उनका कवित्व सुगम्भीर और सुन्दर है, उनकी निष्ठा अत्यन्त महान् है, उनका फल अति उत्तम हाता है, सिम्बालिज्म ही आइडियलिज्म है—ये बातें पिताजी आजकल मुझे सुना सुनाकर समय-असमय कहते रहते। मैंन जीभ को रोक रखा था, परन्तु मन को चुप करके नही रख सका। जो बात मुह तक आ कर लौट जाती थी, वह यही थी कि 'इन सबको यदि आप मानते हैं, तो पालन करते समय मुर्गी क्यो पालत है?' और भी एक बात याद आती थी कि पिताजी न ही एक दिन पात्रपावण, विधि निषेध, दान दक्षिणा के कारण अपनी असुविधा अथवा हानि होने की चिन्ता से माँ को कठोर भाषा म इन सब अनुष्ठानो को पाखण्ड कहते हुए ताडना दी थी। माँ उस समय दीनता स्वीकार करते हुए—'अबला जाति स्वभाव से ही ना समझ होती है' कहकर, सिर झुकाकर उनकी नाराजगी के धक्के को सँभालते हुए, ब्रह्मभोज के विस्तृत आयोजन म प्रवृत्त हो गई थी। परन्तु विश्वकर्मा लाजिक के पक्के साँचे म ढाल कर जीवो का सृजन नही करते! अतएव किसी मनुष्य को यह कहकर कि 'तुम्हारी बात और काय म सगति नही है,' चुप नही किया जा सकता, केवल नाराज किया जा सकता है। न्यायशास्त्र की दुहाई देने पर अन्याय की प्रचण्डता और बढ जाती है—जो लोग पालिटिकल अथवा गार्हस्थ्य एजीटेशन मे विश्वास करते हैं उन्ह यह बात याद रखना चाहिए। घोडा जब अपने पीछे लगी हुई गाडी को अन्याय समझ कर उसपर लातें चलाता है, उस समय अन्याय तो बना ही रहता है, साथ ही उसके पाँव भी जख्मी हो जाते हैं। यौवन के आवेग मे, जरा सा तर्क कर देने से मेरी वही दशा हुई। पौराणिकी लडकी के हाथ से रक्षा तो अवश्य हो गई परन्तु पिताजी

के आधुनिक युग की वसीयत का आश्रय भी खो दिया। पिताजी बोले—'जाओ, तुम आत्मनिभर बनो।'

मैंने प्रणाम करके कहा— जा आज्ञा।'

मा बैठी-बैठी रोने लगी।

पिताजी का दायाँ हाथ मुझसे विमुख अवश्य हो गया, परन्तु बीच म माँ के रहते हुए समय समय पर मनीऑडर वाले पियाद से भेंट हाती रही। बादल ने वर्षा बन्द कर दी परन्तु गुप्त रूप से—स्निग्धरात्रि म शिशिर का अभिषेक चलने लगा। उसी के बल पर मैंन व्यापार शुरू कर दिया, जो ठीक उनासी रुपया से प्रारम्भ हुआ। आज उसी कारबार म जो मूलधन लगा हुआ है, वह ईर्ष्या भरी जनश्रुति की अपेक्षा बहुत कम होने पर भी, बीस लाख रुपय स कम नही है।

प्रजापति के प्यादे मेरे पीछे पीछे फिरन लगे। पहले ना सब द्वार बन्द थे, अब उनकी रुकावट नही रही। याद है एक दिन यौवन की दुर्निवार दुराशा म एक षोडशी के प्रति (कुछ निष्ठावान पाठका के भय स उम्र कुछ सहनीय करके कही है) अपने हृदय को उन्मुख किया था, परन्तु खबर मिली कि कन्या का मातपक्ष सिविलियन अफसर के प्रति उत्सुक है कम से कम बरिस्टर म नीचे उनकी दृष्टि नही पहुँचती। मैं उनके मनोयोग मीटर के जीरोपाइट से नीचे था। परन्तु बाद मे उसी घर म, एक और दिन मैंन केवल चाय ही नही वरन् लच खाया था, रात म डिनर के बाद लडकिया के साथ व्हीस्ट खेला था, उनके मुह स विलायत के एकदम खास महल की अँग्रेजी बातचीत सुनी थी। मरी मुश्किल यही थी कि रसेल्स डेपार्टेड, विलेज एव एडीसन स्टील पढकर मैंन अँग्रेजी म निपुणता प्राप्त की थी इन लडकियो के साथ होड करना मेरे वश का नही था। O my, O dear आदि उद्गार मरे मुह से ठीक सुर मे नही निकलना चाहत थ। मेरे पास जितनी विद्या थी उससे मैं अत्यन्त आधुनिक अँग्रेजी भाषा म, बडी शान से हाट-बाजार म खरीद बिक्री कर सकता था, परन्तु बीसवी शताब्दी की अँग्रेजी म प्रेमालाप करन की बात याद करके मरा प्रेम ही भाग जाता था। अथच, इन लोगो के मुह म बँगला भाषा का जैसा अकाल था, उससे इन लागो के साथ शुद्ध बकिमि सुर म मधुरालाप करन म रुकना पडता था। उसस महनत का फल कम मिलता। खर जो भी हो, ये सब विलायती पालिश की हुई लडकियाँ एक दिन मेरे लिए सुलभ हो गई थी। परन्तु एक दिन बन्द दरवाजे की फाँक म से मैंने जो

मायापुरी देखी थी—और दरवाजा जब खुला, उस समय फिर उसका पता नही चला—उस समय मुझे केवल याद आने लगी, मेरी व्रतचारिणी मा, जो निरथक नियमा की निरन्तर पुनरावत्ति के चक्कर म दिन रात घूम घूम कर अपनी जड-बुद्धि की तृप्ति करती थी। ये लडकिया भी ठीक उसी बुद्धि को लेकर विलायती चाल चलन और अदब कायदा के समस्त तुच्छातितुच्छ उपसर्गों की प्रदक्षिणा करती हुई, दिन पर दिन, वप पर वप, अनायास ही अवचात चित्त स काटे दे रही ह। वे जिस प्रकार छाया और स्नान का लेश मात्र स्खलन दखकर घणा से भर उठती हैं, ये भी एकसण्ट की मामूली गलती अथवा काट चम्मच के अल्प विपयय को देखकर, ठीक उसी तरह से अभागे मनुष्यत्व के सम्बन्ध म सदिग्ध हो उठती है। वे लोग देशी पुतली हैं, ये लोग विदेशी पुतली ह। मन की गति के वग से ये लोग नही चलती, अभ्यास क दमदार यन्त्र से ये लोग चलती है। अतत फल यही हुआ कि स्त्री जाति के ऊपर मुझे मन ही मन अश्रद्धा हो गई, मैंन समझ लिया कि उन लोगा म बुद्धि जब कम है जब स्नान उपवास क अकम-काण्ड प्रकाण्ड न होने पर वे लोग जिएँगी किस तरह ? पुस्तक मे पढा था कि एक तरह के जीवाणु हैं, व क्रमश सिमटते रहते हैं। परन्तु मनुष्य सिमटता नही है, मनुष्य चलता है। उन जीवाणुओ के परिवर्तित सस्करण के रूप मे ही क्या विधाता ने अभागे पुरुष के विवाह का सम्बन्ध बना डाला है?

इधर मरी उम्र जितनी बढ चली, विवाह क बारे मे द्विधा भी उतनी ही बढ उठी। मनुष्य की एक उम्र होती है, जब वह विचार किये बिना भी विवाह कर सकता है। उस उम्र के निकल जाने पर विवाह करने के लिए दुस्साहसिकता की आवश्यकता होती है। मैं उस बेपरवाह दल का आदमी नहीं हूँ। इसके अतिरिक्त कोई समझदार लडकी बिना कारण के, एक पल म मुझसे क्या विवाह कर डालेगी—मैं तो किसी तरह भी नही सोच पाया। सुना है कि प्यार अन्धा होता है—परन्तु इस मामले म उस अन्धे के ऊपर तो कोई भार नही है। सासारिक बुद्धि की दो आखो के अतिरिक्त और भी कई आँखें होती है—वे आखें जब—बिना किसी नशे के—मेरी ओर तक कर देखती हैं उस समय मेरे भीतर क्या देख पाती है, मैं यही सोचता हूँ। मुझमे अवश्य ही अनक गुण हैं, परन्तु उन सबको तो पहचानने म देर लगती है, एक दृष्टि म ही वे नही समझे जा सकते। मेरी नाक मे जो कमी है, बुद्धि की उन्नति ने उसे पूण

कर दिया है—यह जानता हूँ, परन्तु नाक तो प्रत्यक्ष दिखाई देती है और भगवान ने बुद्धि को निराकार ही कर रखा है ! कुछ भी हो, जब देखता हूँ कि कोई बालिग लडकी—बहुत थोडे समय के नोटिस पर ही विवाह करने म जरा भी आपत्ति नही करती, तब स्त्रियो के प्रति मेरी श्रद्धा और भी कम हो जाती है। मैं यदि लडकी होता, तो श्रीयुक्त सनत्कुमार की अपनी ही छोटी नाक के दीर्घ निश्वास से—उसकी आशा एव अहकार धूलिसात् हो जाता।

इस तरह से मरे विवाह की खाली नौका बीच-बीच म रतीले टापुआ पर रुकती थी, परन्तु घाट पर नही आ पाती थी। स्त्री के अतिरिक्त ससार के अन्याय उपकरण—व्यवसाय की उन्नति के साथ साथ बढ चलन लगे। मैं एक बात भूल गया था कि मेरी उम्र भी बढ रही थी। मगर अचानक एक घटना न यह बात याद दिला दी।

अभ्रक की खान की खोज मे छोटा नागपुर के एक शहर म जाकर मैंन देखा कि पण्डितजी वहा शालवन की छाया म, छोटी-सी नदी के किनारे एक सुन्दर मकान बनाकर रह रहे हैं। उनके लडक उस जगह काम करत थे। उसी शालवन के कोन म मेरा तम्बू गडा था। इस समय देश भर म मेरे धन की ख्याति फली हुई थी। पण्डितजी बोले—समय आने पर मैं असाधारण व्यक्ति बन जाऊँगा, इस वे पहले ही जानते थे। सो हो सकता है, परन्तु आश्चयजनक रूप स इसे वे छिपाये रहे थे। इसके अतिरिक्त किस लक्षण द्वारा यह सब उन्हाने जान लिया था वह तो कह ही नही सकता ! लगता है असाधारण लोगो को छात्रावस्था मे तत्वज्ञान नही रहता। काशीश्वरी ससुराल म थी इसीलिए बिना बाधा के मैं पण्डितजी के घर का आदमी बन बैठा। कई वष पूव उन्हे पत्नी-वियोग हो गया था—परन्तु वे नातिनियो से घिरे रहते थे। सभी उनकी अपनी नही थी उनम से दो उनके परलोकगत बडे भाई की थी। वृद्ध इन सबको लेकर अपने बुढापे की शामा को अनेक रगो से रगीन बनाये रहते थे। उनके अमरुशतक, आर्या सप्तशती हसदूत, पदाकदूत के श्लोको की धारा झाडी के चारो ओर पहाडी नदी के फेनोच्छल प्रवाह की भाति इन लडकिया को घेरे हुए हास्यपूवक ध्वनित हो उठती थी।

मैंन हँसकर कहा— पण्डितजी मामला क्या है ?'

व बोले - बेटा, तुम लोगो के अंग्रेजी शास्त्र मे कहते हैं कि शनिग्रह

चद्रमाओ की माला पहने रहता है—यह मेरी वही च द्रमा की माला है !'

उस दरिद्र घर का यह दृश्य देखकर अचानक मुझे याद आ गया कि मैं अकेला हूँ। मुझे लगा कि मैं अपने भार से स्वय ही क्लान्त होकर पडा हुआ हूँ। पण्डितजी नही जानते कि उनकी उमर हो चुकी है, परन्तु अपनी उम्र मैं स्पष्ट रूप से जान गया। उमर हो गई है—कहने पर यही समझ म आता है कि मैं अपने चारो ओर को छोड आया हूँ, चारो ओर ढील पड कर दरार हो गई है। वह दरार रुपयो से या ख्याति से नही भरी जा सकती। मैं पृथ्वी स रस नही पा रहा हूँ, केवल वस्तु सग्रह कर रहा हूँ, मगर यह व्यथता अभ्यासवश भूली रहती है। परन्तु पण्डितजी के घर को जब देखा, तब समझा कि मेरे दिन सूखे हैं, रातें सूनी हैं। पण्डितजी निश्चित रूप से तय किये बैठे है कि मैं उनकी अपेक्षा भाग्यवान पुरुष हूँ—यह बात सोचकर मुझे हँसी आ गई। इस वस्तु जगत् को घेरे हुए एक अदृश्य आनन्द लोक है। उस आनन्द लोक के साथ हमारे जीवन का सम्पर्क-सूत्र न रहने से—हम लोग त्रिशकु की भाति शून्य मे लटके रहते है। पण्डितजी का उससे सम्पर्क था, मेरा नही था—यही अन्तर है। मैं आराम कुर्सी के दोनो हत्थो पर दोना पाव रखकर सिगरेट पीते पीते सोचने लगा—पुरुष के जीवन के चार आश्रमा के चार अधिदेवता होते हैं, बाल्यवस्था मे माँ, युवावस्था म पत्नी, प्रौढावस्था मे पुत्री, बुढापे म नातिनी या पौत्र-वधू। इस प्रकार स्त्रियों के बीच रहकर पुरुष अपनी पूर्णता को प्राप्त करता है। इस तत्त्व न ममरित शालवन मे मुझे आविष्ट कर लिया—देखकर अपनी दु खद नीरसता से हृदय हाहाकार कर उठा। इस मरु माग के बीच से मुनाफे का बोझ कन्धो पर लिए हुए कहीं जाकर औंधे मुह गिर कर मर जाना पडेगा ! और देर करने से तो काम नहीं चलेगा। फिलहाल चालीस की उम्र हो चुकी है—यौवन की आखिरी थली को झपट लेने के लिए पचास की उम्र सडक के किनारे बैठी हुई है, उसकी लाठी की नोक इस जगह से दिखाई दे रही है। अब जेब की बात बन्द रखकर, जीवन की बात को जरा सोच देखा जाय ! परन्तु जीवन का जो अश मुल्तवी पडा हुआ है, उस अश मे फिर लौट पाना तो सम्भव नही। फिर भी उसकी फटेहाली मे पबन्द लगान का समय अभी पूण रूप से नही बीता है।

यहाँ से काम के सिलसिले म, पश्चिम के एक शहर मे जाना पडा। वहा विश्वपति बाबू नामक धनी बगाली महाजन थे। उन्ही से मेरे काम की बात

थी। आदमी बडे होशियार थे, लिहाजा उनके साथ कोई बात पक्की करने मे बहुत समय लगता था। एक दिन निराश होकर जब सोच रहा था कि इनके साथ मेरे काम म सुविधा नही होगी—यही क्या, नौकर से अपन चीज वस्त को पैक करने के लिए भी कह दिया—तभी विश्वपति बाबू सध्या के समय आकर मुझस बोले—'आपके साथ अवश्य ही अनेक प्रकार के लोगो की बातचीतें चल रही होगी आप जरा ध्यान दें तो एक विधवा बच जाएगी।'

घटना यह थी—

नदकृष्ण बाबू बरेली म पहली बार आय थे, एक बगाली अँग्रेजी स्कूल के हैडमास्टर होकर। काम बहुत अच्छा किया था। सभी को बडा आश्चय हुआ कि एस सुयाग्य सुशिक्षित व्यक्ति अपना देश छोडकर इतनी दूर, सामाय वेतन पर नौकरी करन आये किस कारण से ? केवल परीक्षा पास करान म ही उनकी ख्याति हो—ऐसा नही था, सभी अच्छे कार्यो म उहान हाथ लगाया था। इसी बीच न जान किस तरह प्रकट हो गया कि उनकी स्त्री रूपवान है, परतु अच्छे कुल की नही है, किसी साधारण जाति की स्त्री है—यही क्यो उसको छून लगते ही पीन के पानी की पानीयता एव अयाय निगूढ सात्विक गुण भी नष्ट हो जात हैं। जब सभी लागा ने उह दबाया, तब वे बोले—हा जाति म छोटी अवश्य है, फिर भी वह मरी पत्नी है। तब प्रश्न उठा कि ऐसा विवाह वध वसे होगा ? जिहान प्रश्न किया था नदकृष्ण बाबू न उनसे कहा—आपन तो शालिग्राम को साक्षी करक एक के बजाए दो स्त्रिया स विवाह किया है एव द्विवचन स भी सतुष्ट नही है—इसके भी बहुत स प्रमाण दे दिए है। शालिग्राम की बात मैं नही कह सकता परन्तु अतर्यामी जानते है कि मेरा विवाह आपके विवाह की अपक्षा वध है हर हालत म वध है—इसकी अपेक्षा अधिक बात मैं आप लोगा के साथ नही करना चाहता।

नदकृष्ण न जिनस ये बातें कही थी, वे प्रसन नही हुए। इसस भी अधिक लोगा का अनिष्ट करने की क्षमता भी उनम अधिक थी। लिहाजा उनके उपद्रव के कारण नदकृष्ण बाबू बरेली छोडकर इस वतमान शहर म आकर वकालत शुरू कर दी। आदमी बडे खरे थे—भूखे रहने पर भी झूठे मुकद्दमा को वे बिलकुल नही लत थे। पहले पहल इससे उह कितनी भी असुविधा हुई हो, अत म उनति होन लगी क्योकि हाकिम लोग उन पर पूर्णरूप से विश्वास

करते थे। एक मकान बनाकर वे जरा जम कर बैठे ही थे कि उन्हीं दिनों देश मे अकाल पडा। देश उजाड हो गया। जिनके ऊपर सहायता बाटने का भार था, उनमें से कोई कोई चोरी कर लेता था, यह बात जब उन्होंने मजिस्ट्रेट को बताई, तो मजिस्टेट ने कहा—'भले आदमी मिलते कहाँ हैं?'

वे बोले—'मुझ पर यदि विश्वास करें, तो मैं इस काम का बहुत कुछ भार ले सकता हू?'

उन्हे भार मिला एव उस भार को वहन करते-करते ही वे एक दिन मध्याह्न म मदान क बीच एक वक्ष के नीचे मर गय। डाक्टर ने कहा—उनके हृदय की गति बन्द होकर मृत्यु हो गई है।

कहानी का इतना हिस्सा मुझे पहले से ही मालूम था। उच्च भावो वाला मस्तिष्क कैसा होता है—इस विषय पर चर्चा करते हुए, इसी कहानी का उल्लेख करके अपने क्लब म मैंने कहा था—'इन्ही नन्दकृष्ण जस व्यक्ति, जो कि ससार म असफल होकर, सूखकर मर गये—न नाम छोडा, न रुपये छोडे— ये ही लोग भगवान के सहयोगी होकर, ससार को ऊपर की ओर—'

जरा सा कहते ही, भरे पाल की नौका के अचानक रेतीले टापू से ठिठक जाने की भाँति, मेरी बातचीत बीच मे ही बन्द हो गई। कारण, हम लोगो मे से एक खूब सम्पत्ति और प्रतिपत्तिशाली व्यक्ति समाचार पत्र पढ रहे थे—वे अपने चश्मे के ऊपर से मेरे ऊपर दृष्टि डालते हुए बोल उठे— हियर, हियर!

जाने दो। सुना गया कि नन्दकृष्ण की विधवा स्त्री—अपनी एक लडकी को लेकर इसी मुहल्ले म रहती हैं। दिवाली की रात म लडकी का जन्म हुआ था, अत पिता ने उसका नाम रक्खा था दीपाली। विधवा ने समाज म कहीं स्थान न पाने के कारण, सम्पूर्ण रूप से अकेली ही रहकर इस लडकी को पढना लिखना सिखाकर बडा किया था। इस समय लडकी की उम्र पच्चीस से ऊपर होगी। माँ का शरीर रुग्ण है और उम्र भी कम नहीं है—किसी दिन वे मर जाएँगी, तब इस लडकी की कहीं भी कोई गति नहीं होगी। विश्वपति ने मुझसे विशेष अनुनय करके कहा—'यदि इसके लिए पात्र जुटा सकें, तो यह एक पुण्यकर्म होगा!'

मैंने विश्वपति का शुष्क, स्वार्थपरक, केवल अपने काम मे ही लगा रहने वाला व्यक्ति समझ कर मन ही मन अवज्ञा की थी। विधवा की अनाथ लडकी

के लिए उनके इस आग्रह को देखकर मेरा मन द्रवित हो गया। सोचा—प्राचीन पृथ्वी के मत मैमथ के पेट के भीतर मे खाद्य बीज बाहर निकाल कर देखा गया है कि उसम से अँकुर निकल रहे है—उसी तरह मनुष्य का मनुष्यत्व, विपुल मतस्तूप के भीतर रहते हुए भी सम्पूण रूप से मरना नही चाहता।

मैंने विश्वपति से कहा—'पात्र मेरा परिचित है, कोई बाधा नही पडेगी। आप लोग बात एवम् दिन निश्चित कर लीजिए।'

'परन्तु लडकी को दखे बिना तो और—

'बिना देखे ही होगा!'

परन्तु पात्र यदि सम्पत्ति का लोभी हो, तो वह बहुत अधिक नही है। माँ के मर जाने पर केवल यह मकान ही मिलेगा, और सामान्य जो कुछ भी हो सकेगा, सा मिल जाएगा।'

पात्र के पास अपनी सम्पत्ति है उसके लिए चिन्ता नही करनी होगी।'

'उनका नाम, विवरण आदि—?

'वह इस समय नही बताऊँगा, अन्यथा जान पहचान होकर विवाह म रुकावट पड सकती है।'

लडकी की मा से तो उमके बारे म कुछ कहना पडेगा।

कह दीजिएगा—आदमी अन्य साधारण मनुष्या की तरह गुण-दोपमय है। दोप इतना अधिक नही है जो चिन्ता करनी पडे, गुण भी इतना अधिक नही है जा लालच किया जा सके। मैं जहाँ तक जानता हूँ उससे कन्याओ के माता पिता उसे विशेप पसन्द करते है—स्वय कन्याआ की बात ठीक से नही जानी जा सकती।'

विश्वपति इस मामले म जब स्वय अत्यन्त कृतज्ञ हुए, तब उनके ऊपर मेरी भक्ति बढ गई। जो कारबार इससे पहले उनके साथ मेर भाव पर नही बन रहा था उसम नुकसान उठा कर भी रजिस्ट्री के दस्तावेजा पर हस्ताक्षर कर देने के लिए मुझे उत्साह ही आया। व जाते समय बोले—'पात्र स कह दीजिएगा कि अन्य सब विपया म कुछ भी हो मगर एसी गुणवती लडकी कही नही मिल सकेगी।

जा लडकी समाज के आश्रय एव आदर से वचित है, उस यदि हृदय के ऊपर प्रतिष्ठित किया जाएगा, तो क्या वह लडकी स्वय को उत्सग करने म

तनिक भी कृपणता करेगी ? जिस लडकी की बडी वडी आशाएँ रहती हैं उसी की आशाओ का अत नही होता। परतु यह दीपाली दीमक की मिट्टी से बनी है, अत मेरे जैसे मिट्टी के बने घर के कोने मे उसकी शिखा असयादित नही होगी।

सन्ध्या के समय रोशनी जला कर मैं अखबार पढ रहा था। इसी समय खबर आई कि एक लडकी मुझसे भेंट करने आई है। घर म कोई स्त्री नही थी, इसीलिए मैं घबरा गया। किसी भद्र उपाय के सोचने से पहले ही लडकी ने घर के भीतर घुसते हुए प्रणाम किया। बाहर से कोई विश्वास नही करेगा, परतु मैं अत्यन्त शर्मीला मनुष्य हूँ। मैंन न तो उसके मुह की ओर देखा, न कोई बात कही। वह बोली—'मेरा नाम दीपाली है।'

गला बहुत मीठा था। साहस करके मैंन मुह उठाकर देखा—वह मुख बुद्धि की कोमलता से ओत प्रोत था, सिर पर घूघट नही था—सादा देशी कपडे, आज के फशन से परे। क्या कहूँ—यही सोच रहा था कि इसी समय वह बोली—'मेरा विवाह करने के लिए आप कोई प्रयत्न मत कीजिएगा।'

और कुछ भी हो, दीपाली के मुह से ऐसी आपत्ति की मैंने प्रत्याशा ही नही की थी। मैंन तो सोच रखा था, विवाह के प्रस्ताव से उनकी देह, मन, प्राण कृतज्ञता से भर उठे होगे।

मैंन जिज्ञासा की—'परिचित अपरिचित किसी भी पात्र से तुम विवाह नही करोगी ?

वह बोली—'नही, किसी भी पात्र से नही।'

यद्यपि मनस्तत्व की अपेक्षा वस्तुतत्व मे ही मेरी अधिक जानकारी थी—विशेषत नारी मन मरे लिए बँगला रचना की अपेक्षा कठिन था, फिर भी इस बात क साधारण अथ को मैं सच्चे अथ के रूप मे नही जान सका। मैं बोला—'जिस पात्र को मैंन तुम्हारे लिए ढूढा है, वह अवज्ञा करन योग्य नही है।'

दीपाली बोली—'मैं उसकी अवज्ञा नही करती, परतु मैं विवाह नही करूगी।'

मैं बोला—'वह व्यक्ति भी तुम्हारा मन से आदर करता है।'

'परन्तु नही, मुझसे विवाह करन के लिए मत कहिएगा।'

'अच्छा, नहा कहूँगा, परतु मैं क्या तुम लोगो के किसी काम म नही आ

सकता हूँ ?'

मुझे यदि किसी लडकियो के स्कूल म पढाने के काम म लगाकर यहाँ स कलकत्ते ले चलें ता भारी उपकार होगा।'

मैं बोला—'काम है, लगा दे सकूगा।'

यह बात सम्पूण सत्य नही थी। लडकिया के स्कूल की खबर मैं क्या जानू। परन्तु लडकिया के स्कूल की स्थापना करन म तो कोई हज नही है।

दीपाली बोली— आप हमारे घर आकर एक बार माँ के साथ इस बात की चचा कर दखेंग ?

मैं बोला— मैं कल सुबह ही जाऊँगा।'

दीपाली चली गई। मरा अखबार पढना बन्द हो गया। छत के ऊपर निकल कर चौकी पर बैठ गया, सितारा स जिज्ञासा की—'कोटि-कोटि योजन दूर रह कर तुम लोग क्या सचमुच ही मनुष्य के जीवन के समस्त कम सूत्र एव सम्बन्ध सूत्रा का चुपचाप बठे बठे बुनते रहते हो ?

इसी बीच कोई खबर दिये बिना—अचानक ही विश्वपति का मँझला लडका श्रीपति छत पर आ उपस्थित हुआ। उसके साथ जा चर्चा हुई उसका मम यही था।

दीपाली स विवाह करन के लिए श्रीपति समाज का त्याग करने को प्रस्तुत है। उसके पिता कहत हैं कि एसा दुष्काय करने पर वे उसे त्याग देंग! दीपाली कहती है कि उसके लिए इतन बडे दुख अपमान और त्याग को कोई स्वीकार कर, एसी योग्यता उसम नही है। इसके अतिरिक्त श्रीपति बचपन स धनी घर मे पला है दीपाली की राय मे वह समाजच्युत एव निराश्रय हाकर दरिद्रता के कष्ट का सहन नही कर सकेगा। इसी को लेकर तक चल रहा है किसी तरह भी उसका निणय नही हो पा रहा है। ठीक इसी सकट के समय मैंन बीच म पडकर इन लागा क बीच एक दूसर पात्र का खडा करके समस्या की जटिलता को अत्यन्त बढा दिया ह। इमीलिए श्रीपति मुझे इस नाटक म स, प्रूफ शीट के कटे हुए अश की तरह हट जान का कह रहा है।

मैं बोला— जब आ ही पडा हूँ तब हटूगा नही! और यदि हटूगा ही, तो गाँठ-काटन क बाद ही हटूगा!'

विवाह का दिन परिवर्तित नही हुआ, केवल पात्र परिवतन हुआ। मैंने

विश्वपति के अनुनय की रक्षा की थी, परन्तु उससे वे सन्तुष्ट नहीं हुए। दीपाली के अनुनय की रक्षा नहीं की, परन्तु भावो से लगा कि वह सन्तुष्ट हो गई है। स्कूल म काम खाली था, या नहीं—सो नहीं जानता, परन्तु मेरे घर मे कन्या का स्थान खाली था, वह भर गया। मेरे जैसे व्यर्थ आदमी भी बिल्कुल निरर्थक नहीं होते, मेरे धन न ही इसे श्रीपति के समीप प्रमाणित कर दिया। उसका गृह-दीप मेरे कलकत्ते के मकान मे ही जला। सोचा था—समयानुसार विवाह न कर पान की कसर को असमय म विवाह करके पूर्ण करना पडेगा, परन्तु देखा कि ऊपर वाले के प्रसन्न होने पर, दो एक क्लास मे डिग जाने पर भी प्रोमोशन मिल जाता है। आज पचपन वर्ष की उम्र मे मेरा घर कन्याओ स भर गया है, और एक पुत्र भी मिल गया है। परन्तु विश्वपति बाबू के साथ मेरा कारोबार बन्द हो गया है—कारण, उन्होंने पात्र को पसन्द नहीं किया।

अस्वीकृत कथा

हमारी महफिल जमी थी पोलिटिकल लकाकाण्ड की बारी म। वतमान अमलदारी के उत्तरकाण्ड से अभी हम लोगो ने सम्पूण रूप स छुट्टी नही पाई थी, परन्तु कण्ठ अवरुद्ध हो गया था, इसके अतिरिक्त वह अग्निदाह का खल भी बद हो गया था।

वङ्गभग* की बगभूमि से विद्रोह का अभिनय शुरू हुआ। सभी जानते है कि इस नाटक के पञ्चम अक का दृश्य अलीपुर* को पार कर पहुँच गया था अण्डमान* के समुद्र तट पर। पार उतरन के महसूल का पाथेय मेरे पास बहुत था, फिर भी शुभ ग्रहो के प्रभाव से, इस पार की हिरासत मे ही मेरी भोग-समाप्ति थी। सहयोगियो म से फासी के तख्ते तक जिनका सर्वोच्च प्रोमोशन हुआ था, उन्हे प्रणाम करके, मैं पश्चिमी भारत के एक शहर के कोने मे होम्योपथी चिकित्सा का फैलाव जमा बैठा था।

उस समय मेरे पिता जीवित थे। वे थे—बगाल

---

* अग्रेजो द्वारा किया गया बगाल का विभाजन।
* कलकत्ते की एक प्रसिद्ध जेल।
* वह द्वीप जहा कालेपानी (देश निकाला) की सजा के लिए—भारत के कैदियो को अँग्रेजी राज्य के समय म भेजा जाता था।

क एक बडे महकमे मे सरकारी वकील। उपाधि थी रायबहादुर। उन्होंने जरा ज्यादा ही तूफान खडाकर, मेरा घर आना बद कर दिय। । उनके हृदय के साथ मेरा सम्बन्ध विच्छिन्न हुआ था या नही—इसे अन्तर्यामी ही जानते हैं, परन्तु जेब के साथ हो गया था । मनीऑर्डर का सम्पर्क तक नहीं था। जिस समय मैं हिरासत में था, उसी समय माँ की मृत्यु हो गई थी। मेरे हिस्से की सजा उन्ही को मिली।

मेरी बुआ के रूप म जो प्रसिद्ध थी, वे मेरी स्वोपार्जित हैं, किंवा मेरी पैतृक है— इस विषय को लेकर किसी किसी के मन म सन्देह है। उसका कारण है, कि मेरे पश्चिम जाने से पहले, उनके साथ मेरा सम्बन्ध सम्पूर्ण रूप स अव्यक्त था। व मेरी कौन हैं—इस विषय को लेकर सन्देह रहे तो बना रह, परन्तु उनका स्नेह मिले बिना—उस आत्मीयता की अराजकता के समय मे मुझे बडा दुःख उठाना पडता। उन्होंने पूरा जीवन पश्चिम म ही बिताया था, उसी जगह विवाह उसी जगह वैधव्य। उसी जगह पति की जमीन-जायदाद थी। विधवा उसी को लेकर सीमित थीं।

उनका एक और भी बन्धन था। उनकी कन्या पति की अवश्य था, खुद उनकी नही। उसकी माँ थी एक युवती दासी, जाति की कहार। पति की मृत्यु के बाद उन्होने लडकी को घर म लाकर पाल लिया था—वह कभी सोचती नही थी कि व उसकी माँ नही हैं।

ऐसी अवस्था म उनका एक और बन्धन बढ गया, वह था मैं स्वय। जिस समय जेलखाने से बाहर मेरा स्थान अत्यन्त सकीर्ण था, उस समय इन विधवा ने ही मुझे अपने घर एव हृदय म आश्रय दिया। उसके बाद पिताजी के देहान्त का जब पता चला, और वसीयत मे उन्होंने मुझे सम्पत्ति से वंचित नही किया, उस समय सुख और दुःख से मेरी इन बुआ की आखो से पानी बह उठा। उन्होंने समझ लिया कि मेरे लिए उनकी आवश्यकता अब समाप्त हो गई है। मगर इसी कारण स्नेह तो समाप्त नही हो गया।

वे बोली—'बेटा, जहा भी रहो, मेरा आशीवाद साथ रहेगा।'

मैं बोला—'वह तो रहेगा ही, उसके साथ तुम्हें भी रहना पडेगा, अन्यथा मेरा काम नही चलगा। हिरासत मे निकल कर जिस माँ को दुबारा नहीं देख सका, वे ही मुझे रास्ता दिखाकर तुम्हारे पास ले आई हैं।'

बुआ अपनी इतन समय से जमी जमाई घर-गृहस्थी को उठा कर मेर साथ कलकत्ता चली आइ। मैंन हँस कर कहा—'तुम्हारी स्नेह-गङ्गा की धारा को पश्चिम स पूव म बहन करके लाया हूँ, मैं कलियुग का भगीरथ हूँ।'

बुआ हस पडा और आँखा का पानी पाछ लिया। उनके मन म कुछ द्विधा भी हुई बोली—बहुत दिना से इच्छा थी कि लडकी की कोई एक व्यवस्था करके अतिम आयु मे तीथ-यात्रा करती फिरूँगी—परन्तु बेटा, आज ता उसके उल्ट रास्ते पर खिंची चली जा रही हूँ।'

मैं बोला—'बुआ मैं ही तुम्हारा सचल तीथ हूँ। किसी भी त्याग के क्षेत्र म तुम आत्मदान क्या न करो उसी जगह तुम्हार देवता स्वय आकर उस ग्रहण कर लेंगे। तुम्हारी आत्मा पवित्र जो है।'

सबसे अधिक एक युक्ति उनके मन म प्रवल हो उठी। उन्ह आशका थी कि स्वभावत मेरी प्रवत्ति का बहाव अण्डमान की ओर है अतएव कोई मुम्ह सँभालन वाला न रहन पर, अन्त म एक दिन पुलिस के बाहु व धन मे आवद्ध हो ही जाऊँगा। उनका मतलब था कि जो कोमल बाहु व धन उसकी अपेक्षा बहुत अधिक कठिन और स्थायी है उसी की व्यवस्था करके फिर व तीथ भ्रमण के लिए बाहर निकलेंगी। मेरा बन्धन हुए बिना उनकी मुक्ति नहीं है।

मेरे चरित्र के बारे म इस जगह गलत हिसाब लगा लिया। जन्म पत्र म मरे वध बन्धन के ग्रह अन्त म मुझे शकुनी गृधिनी के हाथ म सौंप देन म नाराज नहीं थे, परन्तु प्रजापति के हाथ म ?—नव नैव च। कन्याओ के पिताओ की कोई गलती नहीं, उनकी सख्या भी अजस्र थी। मेरी पैतृक सम्पत्ति क विपुल भडार की बात सभी जानते थे, इच्छा करत ही सम्भावित श्वसुर को दिवालिया बनाकर, कन्या के साथ साथ बीस पच्चीस हजार रुपये, नौबत शहनाई बजवा कर हँसत-हँसते अदा करवा सकता था। मगर किया नहीं। मेरे भावी चरित्र लेखक इस बात को स्मरण रखें कि स्वदेश सेवा के सकल्प के सामन एक समय मे मैंन इन बीस पच्चीस हजार रुपया का त्याग किया था। जमा-खच के अक अदश्य स्याही से लिखे हुए हैं यह कहकर मेरी प्रशसा के हिसाब म कमी न रखें। पितामह भीष्म के साथ मेरे महान चरित्र का इसी जगह मेल है।

खर, बुआ न अन्त तक आशा नहीं छोडी। इसी समय भारत के पालिटिकल

आकाश मे हमारे उस छायायुग के परवर्ती युग की हवा वही। पहले ही कह चुका हूँ कि इस समय हम लोग प्रधान नायक नही थे, फिर भी फुट लाइन के बहुत पीछे बीच बीच म निस्तज भाव से हम लागा का आना जाना चलता था—इतना निस्तेज कि बुआ मेरे सम्बध मे निश्चित ही थी। मेरे लिए कालीघाट म शांति-पाठ करान की इच्छा किसी समय उन्हें थी, परन्तु आजकल मेरे भाग्य आकाश मे लाल पगडी के रक्तमेघ एकदम अदृश्य रूप से रह रह ह, इसका उन्ह ख्याल नही रहा। यही भूल कर दी!

उस दिन दुर्गा पूजा के बाजार म थी खद्दर की पिकेटिंग। मैं केवल दशक की भाति ही गया था—मेरे उत्साह का तापमान ९८ अक स नीचे था, नाडी मे अधिक वेग नही था। उस दिन मुझे किसी तरह की आशका हा सकती थी, यह खबर मेरे जन्म पत्र के नक्षत्रो के अतिरिक्त और सभी स अगोचर थी। इसी समय खद्दर प्रचारकारिणी किसी बङ्गाली महिला को पुलिस सार्जेंट न धक्का दिया। पल भर मे ही मेरे अहिंसक-असहयोग के भाव, प्रवल दु सहयोग म परिणित हो गए। लिहाजा तुरन्त ही थान मे मेरी गति हुइ। उसके बाद यथा नियम हिरासत की लालायित गोद म से जेलखाने के अँधेरे के जठर दश म अवतरण किया गया। बुआ से कह गया—इस बार कुछ समय के लिए तुम्हारी मुक्ति है! सयोग से मेरे लिए उपयुक्त अभिभावक का अभाव नही रहा है, अतएव इस सुयोग मे तुम तीथ भ्रमण कर लो। अमिया कालेज के होटस्ल म रहगी मकान मे भी देखने-सुनने वाले लोग हैं। अतएव, इस समय तुम देव सवा मे सोलह आना मन लगा दोगी, तो देव-दानव किसी को भी काई आपत्ति की बात नही रहेगी।

जेलखाने को जेलखाना समझ कर ही मैंने गिन लिया था। वहा कोई दावा अधिकार, रोबदाब, उत्पात आदि नही किया। उस जगह सुख, सम्मान, सौजन्य, सुहृदय और सुखाद्य के अभाव म कभी चकित नही हुआ। कठोर नियमा को मैंन कठोर भाव से ही मान लिया था। किसी तरह की आपत्ति करना ही लज्जा की बात मान ली थी।

अवधि समाप्त होने से कुछ पहले ही छुट्टी मिल गई। चारो ओर खूब तालियाँ बजी। मन को लगा—जैसे सारे बगाल की हवा म गूज रहा है—

'एनकोर ! एक्सेलेण्ट !' मन खराब हो गया । सोचा—जिसने कष्ट भोगा, उसी ने भोगा—और मिष्ठान्नमितरेजना, रस मिला पूरे देश को ! वह भी अधिक देर तक नही। नाट्य मच पर पर्दा पड जाता है प्रकाश बुझ जाता है, उसके बाद सब भूल जाते हैं । केवल बेडी हथकडी के दाग जिसकी हडिडयो मे जा लगे होत हैं, उसी को बहुत दिनो तक स्मरण रहता है ।

बुआ अभी तक तीर्थ मे थी। कहाँ—उसका पता ठिकाना भी नही जानता था। इसी बीच पूजा (दुर्गापूजा) का समय समीप आ गया। एक दिन सध्या के समय मेरे सम्पादक मित्र आ उपस्थित हुए। बोले— अजी, पूजा विशेषाङ्क के लिए एक रचना चाहिये।'

मैंने जिज्ञासा की—'कविता ?

'अरे नही। तुम्हारा जीवन वृत्तान्त !'

'वह तो तुम्हारे एक अक मे आ नही पाएगा।'

'एक अक मे क्या ? क्रमश निकलेगा !'

'सती की मृत देह को सुदशन चक्र से टुकडे-टुकडे करके काट डाला गया था। मेरा जीवन चरित्र सम्पादकी के चक्र से टुकडे टुकडे कर, अक अक म बिखरा दिया जाएगा। यह मुझे पसन्द ही नही है। जीवनी यदि लिखू, तो सम्पूर्ण रूप म एक साथ प्रकाशित करो !'

'न हो तो अपने जीवन की कोई एक विशेष घटना ही लिख दो न !'

'कैसी घटना ?'

'तुम्हारी सबसे अधिक कठोर अनुभव जिसमें खूब उग्रता हो।'

लिख कर क्या होगा ?'

'लाग जानना चाहते हैं जी !'

'इतना कौतूहल है ? अच्छा ठीक है लिखूगा !'

'याद रहे कि सबसे अधिक जो तुम्हारा कठोर अनुभव हो।'

अर्थात्, जिसके कारण सबसे अधिक दु ख पाया हो, लोगो को उसी म सबसे अधिक मजा आएगा ? अच्छा, ठीक है ! परन्तु नामो को बहुत कुछ बदल देना पडेगा ।

'वह तो होगा ही ! जो एक दम खतरनाक बात है, उसके इतिहास का चिह्न

बदले बिना मुसीबत पड़ेगी। मैं उसी तरह की खतरनाक चीज ही चाहता हूँ। प्रति पृष्ठ तुम्हें—'

पहले रचना को देखूँ, उसके बाद माल मालूम होगा।'

'परन्तु और किसी को नहीं दे सकोगे—कह देता हूँ। जो जितनी भी कीमत देंगे, मैं उससे अधिक—'

'अच्छा अच्छा, वही होगा।''

अंत में उठकर जाते समय वे कहते गए—'तुम्हारे ये—समझ रहे हो? नाम नहीं लूँगा—यही जो तुम्हारे साहित्य धुरंधर हैं - अपने को बड़ा लेखक कहते फिरते हैं—परन्तु कुछ भी कहो, तुम्हारे स्टाइल के सामने उनका स्टाइल जैसे डासन के बूट और तालतल्ले की चप्पल है।

समझ गया कि यह मुझे बाँस पर चढ़ा देने की कोशिश मात्र है, तुलना में धुरंधर को नीचा ठहरा देना ही इसका लक्ष्य है।

यह हुई मेरी भूमिका। अब सुनिए मेरे कठोर अनुभव की कहानी—

'संध्या अखबार जिस दिन से मैंने पढ़ना आरम्भ किया था, उसी दिन से आहार विहार के सम्बन्ध में मुझे बड़ा कष्ट था। उसे जेलयात्रा का रिहर्सल कहा जा सकता था। शरीर के प्रति अनादर का अभ्यास क्रमशः पक्का हो उठा। इसीलिए पहली बार जब मैं हिरासत में ठेला गया तो मेरा प्राणपुरुष विचलित नहीं हुआ। उसके बाद बाहर आकर अपने ऊपर किसी की सेवा शुश्रूषा का हस्तक्षेप भी मैं बर्दाश्त नहीं करता था। बुआ दुःख अनुभव करती, तो उनसे कहता—बुआ, स्नेह में मुक्ति सेवा में बन्धन है।' इसके अतिरिक्त किसी के शरीर के लिए मेहनत करने को शरीरधारी का कानून कहता है—अर्थात् डाइ यार्की ब राज्य—उसके विरुद्ध हम लोगों का असहयोग है।

वे निश्वास छोड़कर कहती—अच्छा बेटा, तुम्हें नाराज नहीं करूँगी।'

निर्बोध मन ही मन सोचता कि मुसीबत टल गई।

मैं भूल गया था कि स्नेह भी सेवा का एक प्रच्छन्न रूप है। उसकी माया से बचना कठिन है। अकिंचन शिव जिस समय अपनी भिक्षा की थाली को लेकर दरिद्रता के गौरव में मग्न रहते हैं उस समय उन्हें यह खबर नहीं रहती कि लक्ष्मी ने किसी समय में उस कोमल रेशम से बुना था और उसके सुनहरे धागों के मूल्य के बदले सूर्य-नक्षत्र भी बिक जाएँगे। जिस समय — भीख का अन्न खा

रहा हूं कहकर य मयासी निश्चिन्त थ, उस समय यह नही जानते थ कि अन्न पूर्णा न उस एसे स्वादिष्ट ममाता स वनाया है कि देवराज इन्द्र भी प्रसाद पान क लिए नदी के वान म चुपचाप फिस फिस कर रहे थे। मरी वही दशा हुइ। सोन, वस्त्र पहनन, भोजन करन म बुआ की सेवा का हाथ गुप्त रूप स अपना जादू दिखान लगा, वह मुझ देश मजक की अन्यमनस्क आंखो को दिखाई नही दिया। मैं मन ही मन सोचे बठा था कि मेरी तपस्या अक्षुण्ण चल रही है। मगर जेलखान म जाकर त द्रा भग हुई। बुआ की और पुलिस की व्यवस्था के बीच एक अन्तर है, मैं अद्वत बुद्धि द्वारा किसी तरह भी उसका समन्वय नही कर मका। मन ही मन क्वल गीता का दोहरान लगा—निस्त्रैगुण्योभवाजुन ! हाय र तपस्वी बुआ के अनेक गुण क्व अनक उपकरणा के सयाग से हृन्य देश का पार कर एकदम पाक यन्त्र (पेट) म प्रवश करते थे, इसे जान भी नही पाया। मगर जेलखान म आकर विपाक (विपत्ति) होन लगा।

फल यही हुआ कि वज्राघात के अतिरिक्त और किसी तरह स शरीर पर काबू न होन के कारण वह अस्वस्थ हो गया। जेल के प्यादा न चाहे मुझे छोड दिया था मगर जेल के रोगा की मियाद ममाप्त नही होना चाहती थी। कभी सिर दुखन लगता हाजमा प्राय खराव रहता सन्ध्या के समय ज्वर बना रहता। क्रमश जव माला चन्दन और तालियाँ फीकी हा आइ तव य सव मुसीबतें टीस मारनेलगी।

मैं मन ही मन सोचता—बुआ ता तीथ करन गई है, इसी कारण शायद अमिया का धमज्ञान नही रहा है ! परन्तु दोप किस दू ? इमस पहल बीमारी वगरह म मरी सेवा करन के लिए बुआ न उम अनक वार उत्साहित किया था—मैंन ही वाधा न्त हुए कहा था कि अच्छा नही लगता।

बुआ न कहा था—अमिया की शिक्षा क लिए ही कहती हूँ, तरे आराम क लिए नही।'

मैंन कहा—अस्पताल न नर्सिंग करन भेज दो न।'

बुआ न नाराज होकर फिर जवाब नही दिया।

आज लेटा लेटा मन ही मन साच रहा हू—चाहे एक वार खुद मना ही किया है पर क्या उसी कारण उम वाधा को मान रहना पडेगा ? गुरुजन के आदश पर इतनी निष्ठा, इम कलियुग म !'

साधारणत अपने आस पास के समाज के छोटे-बड़े अनेक मामले मुझ देश प्रेमी की आंख से ओझल ही बने रहते हैं। परन्तु बीमार पड़े होने के कारण आज-कल दृष्टि प्रखर हो गई थी। मैंने लक्ष्य किया कि अनुपस्थिति में अमिया का देश प्रेम भी पहले की अपेक्षा बहुत अधिक प्रबल हो उठा है। इसमें पूर्व मेरे दृष्टान्त और शिक्षा में उसकी इतनी अभावनीय उन्नति नहीं हुई थी। आज असहयोग के असह्य आवेग से वह कॉलेज-त्यागिनी हो गई है भीड़ में खड़ी हो कर भाषण देने में भी उसका हृदय नहीं धड़कता, अनाथालय के चन्दे के लिए अपरिचित व्यक्ति के घर में जा कर वह झोली फैलाये घूमती भी है। यह भी देखा कि अनिल उसके इस कठिन अध्यवसाय को देखकर उसे देवी कह कर भक्ति करता है—उसके जन्म दिवस पर उसी भाव का एक मुक्त छन्द का स्तोत्र उसने सुनहरी स्याही में छपवाकर, उसे उपहार में दिया था।

मुझे भी इसी तरह का कुछ बनाना पड़ेगा अन्यथा असुविधा हो रही है। बुआ के जमाने में नौकर चाकर नियम से काम करते थे, हाथ के पास कोई-न-कोई मिल ही जाता था। अब एक गिलास पानी की जरूरत होने पर भी, अपने मन्निपुर वाले श्रीमान जलधर के अकस्मात् आगमन की प्रतीक्षा में चातक की भाँति राह देखता रहता हूँ, समय पर औषधि खाने के सम्बन्ध में अपने ही भुलक्कड़ मन के ऊपर एक मात्र भरोसा है। अपने चिर दिनों के नियम-विरुद्ध होने पर भी रोग शय्या पर हाजिरी देने के लिए अमिया को दो एक बार बुलवाया था, परन्तु देखा कि पावों का शब्द सुनते ही वह दरवाजे की ओर चौंक कर देखती, केवल खुस पुस करती रहती। मन में दया आती, कहता—अमिया, आज अवश्य ही तुम लोगों की मीटिंग है।'

अमिया कहती— हां होने दो दादा, अभी और कुछ देर—

मैं कहता— नहीं, नहीं, ऐसा कम होगा। कर्तव्य सबसे पहले है।'

परन्तु प्राय ही देखता कि कर्तव्य में बहुत पहले ही अनिल आ उपस्थित होता उससे अमिया के कर्तव्य उत्साह के पाल में जैसे जोर की हवा लगती, और मुझे अधिक कुछ नहीं कहना पड़ता।

केवल अनिल ही नहीं, विद्यालय त्यजक जो भी अनेक उत्साही युवक मेरे मकान की पहली मंजिल में—शाम के समय चाय एवं इंसपिरेशन ग्रहण करने को एकत्र होते वे सभी अमिया को युगलक्ष्मी कहकर सम्भाषण करते। एक

तरह की पदवी होती है जस रायबहादुर—जो तह की हुई चद्दर की भाँति, जिस भी दी जाती है—वह बिना चिन्ता के, कधे पर डाले हुए घूम सकता है। और एक दूसरी तरह की पदवी भी होती है, वह जिसके भाग्य म जुटती है, वह बेचारा स्वय की पदवी के बराबर ही बडा बनने के लिए रात-दिन उत्कण्ठित बना रहता है। मैंने देखा कि अमिया की वही हालत है। सदव ही अत्यन्त अधिक उत्साह दिखाए बिना रहना उसे नही आता। खाते सोते समय उसे समय न मिल पाना ही विशष समारोह के साथ दिखाना पडता है। इस मुहल्ले स उस मुहल्ले म खबर पहुँचती है। कोई जब कहता है कि शरीर किस तरह स टिकेगा तो वह जरा सा हँस देती है—आश्चयजनक होती है वह हँसी! भक्त लाग कहत है—अब जरा विश्राम कीजिए न किसी तरह से काम तो हम कर ही लेंगे वह इससे खिन्न हो जाती है—थकान से बचना ही क्या बडी बात है?। दुख क गौरव म वचित रहना क्या कम विडम्बना है! उसके त्याग स्वीकार की लिस्ट म मैं भी पड गया हूँ। मैं जो उसका इतना बडा जेलभागी दादा हूँ—उल्लास कर कन्हाई, वारीन, उपेन्द्र आदि के साथ एक नक्षत्र मण्डली म जिसका स्थान है गीता के द्वितीय अध्याय से पार होकर उसका जा दादा गीता के अंतिम अध्याय की ओर अग्रसर हा रहा है उसे भी अच्छी तरह देखन का समय उसे नही मिलता। इतना बडा सक्रीफाइस! जिस दिन किसी कारण से उसके दल के लागा का अभाव हो गया था उस दिन मैंन भी उसके उत्साह के नियमित नशे को जगान के लिए कहा था— अमिया यक्तिगत मनुष्य के साथ सम्बन्ध तरे लिए नहा है तेरे लिए ता सारा वतमान युग है। मेरी बात का उसन गम्भीर मुख स चुपचाप मान लिया था। जेल जान क बाद स मेरी हसी अन्त सलिला हाकर बहा करती थी—जा लोग मुझे पहचानते नही व लोग बाहर स मुझे खूब गम्भीर ही समझा करते थे।

बिछौने पर अकेला पडा-पडा कडी काठ की आर दखता-देखता मैं सोचता—विमुखा राघवा यान्ति। अचानक याद आ गया कि एक दिन कही स एक देसी कुत्ते न आकर मरे बरामदे के कमरे म आश्रय ढूढा था। उसके शरीर के राए खडे हुए थे जीण चमडे के नीचे कंकाल नजर ढँक पा रहा था—उसकी हालत अधमरी हा रही थी। अत्यन्त घणा के साथ उस दुरदुराकर मैंने भगा दिया था। आज सोचता हूँ—इतनी अधिक उग्रता के साथ उस क्यों भगाया? बगाना कुत्ता

हान के कारण नही, उसका मरियल शरीर दखने के कारण मे ही। प्राण धार की सगीत सभा म उसका अस्तित्व बेसुरा था, उसकी रुग्णता बेअदबी थी। उसके साथ अपनी तुलना मन मे आई। चारो ओर बहने वाले प्राणो की धारा म मरी बीमारी एक स्थावर पदार्थ है, स्रोत की बाधा है। वह दावा करता है कि सिर हान के पास चुपचाप बठे रहो। प्राणा का दावा है कि दिशा विदिशाओ म घूमते फिरो। रोग के बन्धन स जो स्वय आबद्ध है, वह निरोगी को बन्दी करना चाहता है—यही एक अपराध है। अतएव जीवलोक पर अपना सम्पूर्ण दावा त्याग दूगा—यह सोचकर गीता खोल बठा। जिस समय लगभग स्थिर प्रज्ञ अवस्था मे आ पहुँचा था, मन रोग अरोग के द्वन्द्व को छोड गया था उसी समय आँखें उठा कर दखा—बुआ की पोष्यमण्डली की एक स्त्री थी। अब तक दूर से ही, साधा रण भाव से उसे जानता था विशेष भाव से उसका परिचय नही जानता था—उसका नाम तक मुझे नही मालूम था। माथे पर घूघट खीचे हुए—धीरे धीरे वह मर पावा पर हाथ फिराने लगी।

उस समय याद आया—बीच बीच म वह मेरे दरवाजे के बाहर, कोन म, छाया की भाति आकर बार बार लौट गई है। शायद साहस करके कमरे म नहीं घुस सकी थी। मेरी नाजानकारी म, मेरे सिरदद शारीरिक पीडा आदि का निवत्तान्त वह ओट म रहकर बहुत कुछ जान गई थी। आज वह लज्जा भय को दूर करके, कमरे म आकर प्रणाम करके बैठ गई। मैंने जा एक दिन एक स्त्री को अपमान स बचाने के लिए दुख स्वीकार का अर्घ्य नारी को दिया था, वह शायद देश की समस्त नारिया की प्रतिनिधि के रूप म मरे पाँवा के पास उसी की प्राप्ति स्वीकार करने के लिए आई थी। जेल से निकल कर मैंने अनक सभाओ म अनक मालाएँ पहनी थी, परन्तु आज घर के कान म यह जा एक अप्रसिद्ध हाथ का सम्मान पाया था, वह मरे हृदय म आकर बज उठा। मैं निस्नगुण्य हान का उम्मीदवार था, मगर इस जेल यात्री पुरुष की बहुत समय से सूखी हुई आखें भीग उठने का उपक्रम करने लगी। पहले ही कह चुका हूँ कि सेवा पान का मुझे अभ्यास नही था। कोई पाव दबान क लिए आता, तो अच्छा नही लगता धमकाकर भगा दता। मगर आज इस सेवा का निरोध करन की इच्छा भी मन म उत्पन्न नही हुई।

खुलना जिले म बुआ की आदिम ससुराल थी। उस जगह की दो चार

ग्रामीण स्त्रियां को बुआ ने बुलाकर रख लिया था। बुआ के काम काज, पूजा-अर्चना मे वे सब उसकी सहायक थी। उनके अनेक प्रकार के क्रिया-कर्मों म, इन सबके न होने पर उनका काम नही चलता था। इस घर म और सब जगह अमिया का अधिकार था, केवल पूजागृह मे नही था। अमिया उसका कारण नहीं जानती थी, जानने की चेष्टा भी नही करती थी। बुआ के मन म था कि अमिया को अच्छी तरह पढना लिखना सिखाकर, एसे घर म विवाह करेंगी, जहाँ आचार-विचार का बन्धन न हो, और देव द्विज जहाँ मे खातिर पाये बिना—सूने हाथो लौट आया करें। यह आक्षेप की बात थी। परन्तु इसके अतिरिक्त उसकी अन्य कोई गति हो ही नही सकती थी—आखिर पिता के पाप मे लड़की का सम्पूर्ण रूप से बचाएगा कौन? इसीलिए अमिया का उन्हाने ढलान के फिसलन भरे तट से उठकर आधुनिक आचार हीनता म उत्तीर्ण होते समय बाधा नही दी थी। बचपन से ही वह क्लास म गणित और अँग्रेजी म फस्ट आती रही थी। वर्ष प्रतिवर्ष वह मिशनरी स्कूल से—फ्राक पहन, वेणी हिलाती हुई चार पाच प्राइज ले आती थी। जिस बार दैवात परीक्षा म द्वितीय आई, उस बार सोने के कमरे का दरवाजा बन्द करके उसने रो रोकर आँखें फुला ली थी, यहाँ तक कि प्रायश्चित करने जा रही थी। इस तरह से परीक्षा देवता के सम्मुख सिद्धि का मनौत करके, उसी की साधना मे वह दीर्घ काल से तन्मय थी। अन्त म असहयोग के योगिनी मन्त्र से दीक्षित होकर, परीक्षा देवी की वर्जन-साधना के बावजूद वह प्रथम श्रेणी म उत्तीर्ण हुई। उसका पास ग्रहण जैसा था, पास छेदन भी वैसा ही हुआ किसी तरह भी वह किसी से पीछे रहने वाली लड़की नही थी। पढाई लिखाई करने पर उसकी जो ख्याति थी, पढाई लिखाई छोड देने पर वह ख्याति और अधिक बढ गई। आज जो सब प्राइज उसके आसपास घूमती है, वे सब चलती हैं वे सब बोलती है, वे अश्रु-सलिल से गल भी जाती है और कविता भी लिखती हैं।

अधिक क्या कहा जाए बुआ के गाँव की पाल्य स्त्रियो पर अमिया को तनिक भी विश्वास नहीं था। जिस समय अनाथालय के लिए चन्दे के रुपयो की अपेक्षा अनाथालयो का ही अभाव अधिक था, उस समय इन स्त्रियो को वहाँ भेज देने के लिए बुआ से अमिया ने बहुत प्रार्थना की थी। बुआ ने कहा था—यह कैसी बात—ये सब तो अनाथ नही है! मैं जीवित किस लिए हूँ?! अनाथ हो या

मनाथ हो, स्त्रिया चाहती हैं घर उन्हें अनाथालय मे छाप (मुहर) लगा कर बन्दोबस्त करके क्या रखा जाए ? तुम्हे यदि इतनी ही दया है, तो तुम्हारा घर नही है क्या ?'

जो भी हो, वह स्त्री जिस समय सिर झुकाए हुए मेरे पाँव पर हाथ फेर रही थी, मैं सकुचित मगर विगलित चित्त से एक अखबार मुह के सामने रखकर विज्ञापन के ऊपर आखें गड़ाए रहा। इसी समय अचानक असमय मे ही, अमिया घर के भीतर आ उपस्थित हुई। नवयुग के लिए उपयोगी भैयादूज की एक नई व्याख्या उसने लिखी थी। उसी का अँग्रेजी मे वह प्रचार करना चाहती थी, मेरे पास उसी म सहायता के लिए आना आवश्यक था। इस लेख के आरिजनल आइडिया से उसका भक्त दल खूब उत्साहित था—इसे लेकर खूब धूमधाम करने के लिए उन्होंने कमर बाँध ली थी।

घर म घुसते ही, सेवा नियुक्त उस स्त्री को देखते ही अमिया के मुख का भाव अत्यन्त कठोर हो उठा। उसके देशविश्रुत दादा यदि जरा सा इशारा मात्र कर देते, तो सेवा करने वाले लोगों का क्या अभाव था ? इतने मनुष्यों के रहते हुए, अन्त मे क्या इसी—

वह रुक नहीं सकी। बोली—'दादा, हरिमति को क्या तुम—'

प्रश्न समाप्त न करने देकर मैं तुरन्त ही बोल पडा—'पाँव म बहुत दर्द हो रहा था।'

एक स्त्री को पुलिस-सार्जेण्ट के हाथों अपमान से बचाने के लिए जान पर मैं जेल गया था। आज एक स्त्री के क्रोध से दूसरी स्त्री को बचाने के लिए झूठ बात कह बैठा। इस बार म दण्ड मिलना आरम्भ हुआ। अमिया स्वय मेरे पाँवों के पास बैठ गई। हरिमति ने उससे कुण्ठित मदुकण्ठ से न जाने क्या कुछ कहा, उसने जरा सा मुह टेढ़ा करके, जवाब ही नहीं दिया। हरिमति धीरे धीरे उठ कर चली गई। तब अमिया मेरे पाँवों को ले बैठी। मेरी मुसीबत आ गई। किस तरह कहूँ कि 'आवश्यकता नहीं है मुझे अच्छा ही नहीं लगता।' इतने दिनों तक अपने पाँवों के सम्बन्ध म जो स्वायत्तशासन सम्पूर्णरूप से स्थिर रखे हुए था, वह अब नहीं टिकेगा शायद।

झटपट उठ कर बैठते हुए बोला—'अमिया, अपना लेख तो दे, उसका अनुवाद कर डालूं।

'अभी रहने दो न दादा ! तुम्हारे पाँव म दद हो रहा है, जरा दबा दू न !'

'नहा, पाँव क्या दद करेगा ? हाँ, हाँ, थाडा सा दद अवश्य हो रहा है ! तो दख, अभी तेरा यह भयादूज का आइडिया बडा चामत्कारिक है। यह कस तेरे दिमाग म आया, मैं तो यही सोचता हूँ। यह जो तूने लिखा है कि वतमान युग म भाइयो का हृदय अत्यन्त विराट है समस्त बगाल म फला हुआ है किसी एक घर म वह सीमित नही है—यह एक बहुत बडी बात है ! ले, मैं लिख डालू—With the advent of the present age, Brother s brow waiting for its auspicious anointment from the sisters of Bengal has grown immensely beyond the narrowness of domestic privacy beyond the boundaries of the individual home किसी अच्छे आइडिया को पाकर, कलम पागल होकर दौडने लगती है।

अमिया की पाँव दबाने की झाक एकदम रुक गई। मेरा सिर दद कर रहा था, लिखने म जरा भी मन नही लग रहा था—फिर भी एस्प्रीन की गोली निगल कर बठ गया।

दूसरे दिन दोपहर के समय मेरा जलधर जिस समय दिवा निद्रा मग्न था, ड्योढी पर दरबानजी तुलसीदास की रामायण पढ रहे थ, भालू नचाने वाले की डुगडुगी गली के मोड म सुनाई पड रही थी, विश्राम त्यागी अमिया जिस समय युगलक्ष्मी के वतव्यपालन म निकल गई थी, इसी समय दरवाजे के बाहर, निजन बरामदे म एक भीरु छाया दिखाई दी। अन्त म द्विधा करते करते अचानक ही एकदम—वही स्त्री एक हाथ का पखा लेकर मेरे सिर के समीप बठकर हवा करने लगी। समझ म आ गया कि कल अमिया के मुह के भावो को दखकर—पावो से हाथ लगाने का उसे आज साहस नही हुआ था। अभी हाल ही म बगाल के नये भार्तृदूज के प्रचार की मीटिंग बठगी। अमिया व्यस्त रहेगी। इसलिए सोचा था कि भाग्य पर भरोसा करके कह डालू, कि पावो म बडा दद हो रहा है ! भाग्य ने कहा नही—यह झूठी बात मन के भीतर जिस समय इतस्तत कर रही थी ठीक उसी समय—अनाथालय की त्रमासिक रिपोट हाथ म लिए हुए अमिया का प्रवश हुआ। हरिमति के पखा चलने म अचानक चमक लग गई, उसके हृतपिण्ड की चचलता और मुखश्री की विवणता का अन्दाज करना कठिन नही हुआ। अनाथालय की इस सक्रेटरी के भय से, उसके पखे की गति बहुत

धीमी हो आई।

अमिया बिस्तर के एक किनारे पर बैठ कर खूब कड़े स्वर में बोली — देखो दादा, हमारे देश में—घर घर कितनी ही आश्रयहीन स्त्रियाँ, बड़े बड़े परिवारों में पल कर दिन काट रही हैं, हालाँकि उन सब धनी घरों में उनकी आवश्यकता तनिक भी जरूरी नहीं है। गरीब स्त्रियाँ, जो मजदूरी करके खाने के लिए बाध्य हैं, ये सब उन्हीं लोगों के अन्न-अर्जन करने में बाधा मात्र देती हैं। ये लोग यदि जनसाधारण के काम में लगें जैसे कि हमारे अनाथालय के काम में—तो उससे—'

मैं समझ गया कि मुझे लक्ष्य करके—हरिमति के ऊपर ही इस भाषण की शिलावृष्टि थी। मैं बोला— अर्थात् तुम चलोगी अपने शौक के अनुसार और आश्रयहीना स्त्रियाँ चलेंगी तुम्हारे हुक्म के अनुसार? तुम बनोगी अनाथालय की सेक्रेटरी और वे सब होंगी अनाथालय की सेविकाएँ! इसकी अपेक्षा वह स्वयं ही सेवा के काम में लगी समझ सकती हो कि वह काम तुम्हारे लिए असाध्य है! अनाथालयों को स्थापित करना सहज है, सेवा करना सहज नहीं है! दावा अपने ऊपर करो दूसरों के ऊपर मत करो!!

मेरा छात्र स्वभाव है, बीच बीच में भूल जाता हूँ— अक्रोधेन जयेत् क्रोधम्!' फल यही हुआ कि अमिया ने, बुआ की सदस्याओं में से ही एक अन्य स्त्री को लाकर हाजिर कर दिया—उसका नाम था प्रसन्न! उसे मेरे पाँव के पास बैठा कर कहा— दादा के पाँवों में दर्द हो रहा है। तुम पैर दबा दो! यह यथोचित अध्यवसाय के साथ मेरे पाँव दबाने लगी। यह अभागा दादा अब किस मुँह से कहे कि उसके पाँवों में किसी तरह का विकार नहीं हुआ है? किस तरह जताए कि इस तरह से दबाया-दबाई करके केवल उसे परेशान किया जा रहा है? मन ही मन समझ गया कि रोग शय्या पर अब रोगी का नामोनिशान नहीं रहेगा! इससे तो अच्छा है—नये बंगाल की भाईदूज समिति का सभापति हो जाना!! पंखे की हवा धीरे धीरे थम गई। हरिमति ने स्पष्ट अनुभव कर लिया कि यह अस्त्र उसके लिए है। यह हुआ प्रसन्न के द्वारा हरिमति को उखाड़ देना। कण्टकेनैव कण्टकम्! लिहाजा थोड़ी देर बाद पंखे को जमीन पर रख कर वह उठ खड़ी हुई। मेरे पाँवों के समीप मस्तक टेक कर प्रणाम करके धीरे धीरे दोनों पाँवों पर हाथ फेर कर वह चली गई।

मुझे फिर गीता खोलनी पड़ी। तब भी श्लोकों की फाँक में से दरवाजे की

फांक की ओर दख लेता था—परन्तु उसकी छाया भी फिर कहीं दिखाई नही दी। उसके बदले प्रसन्न प्राय ही आती। प्रसन्न के उदाहरण से और भी दो चार स्त्रियाँ अमिया के देश विख्यात दशभक्त दादा की सेवा करने के लिए जुट गइ। इधर सुनाई पडा कि हरिमति एक दिन किसी से कुछ कह बिना, कलकत्ता छोड कर अपने गाँव के मकान म चली गई है।

महीने की बारहवी तारीख का सम्पादक मित्र न आकर कहा—'यह क्या मामला है! मजाक है क्या?! यही तुम्हारा कठोर अनुभव है?'

मैं हँसकर बोला—पूजा के बाजार म नहीं चलेगा क्या?'

'बिलकुल नहीं! यह ता बहुत ही हल्के प्रकार की वस्तु है!!

बेचार सम्पादक का दाष नही है! जेल निवास के बाद स, मरा अश्रुजल अन्त सलिल हाकर बहता था। लाग बाहर स मुझे बडी गम्भीर प्रकृति का आदमी ही समझत थे।

वे यह गल्प (कहानी) मुझे लौटाकर चल गय।

ठीक उसी समय अनिल आया। बोला—'मुह स नही कह सकूगा इस चिट्ठी को पढिए!

चिट्ठी म अमिया स, अपनी दवी स, युगलक्ष्मी से विवाह करन की इच्छा जताइ गई थी, यह बात भी कही गई थी कि अमिया की असम्मति नहीं है।

उस समय अमिया का जन्मवृत्ता त उसस कहना पडा। सहज ही नही कह सकता, परन्तु जानता था कि हीनवण क ऊपर अनिल श्रद्धापूण करणा प्रकट करता रहता था। मैंन उसस कहा—पूवजा का कलक जन्म क द्वारा ही नष्ट हो जाता ह यह तो तुम लाग अमिया क जीवन म ही स्पष्ट रूप स देख रहे हो! वह पद्म है, उसम पक (कीचड) का चिह्न नहीं है!'

नय बगाल की भाईदूज की सभा उसके बाद फिर नही जमी। तिलक तयार रह गया, कपाल न दौड लगा दी। और सुना है, अनिल न कलकत्ता छोडकर कुमिल्ला म स्वराज्य प्रचार का कोइ एक काम ले लिया है।

अमिया कालेज म भर्ती होन के प्रयत्न म है। इस बीच बुआ के तीर्थयात्रा *स लौट आन के बाद, शुश्रूषा की अनेक प्रकार की* बडियो से मरे दानो पाँवा न छुटकारा पा लिया है।

भैया-दूज

श्रावण मास आज जैसे एक रात मे ही एकदम दिवालिया हो गया था। सम्पूर्ण आकाश मे कही भी मघ का एक टुकडा भी नही था।

आश्चय यही था कि मेरा सवेरा आज इस तरह से बीत रहा था। मेरे बगीचे की मेहदी क वेडे के कोन म—शिरीषवक्ष के पत्ते झलमला रहे थे, मैं उन्ह टकटकी लगा कर देख रहा था। मैं सवनाश के जिस बीच दरिया में आ पहुँचा था यह जब दूर ही था, उस समय इसकी बाबत सोचकर कितनी ठण्डी रातों म सर्वांग से पसीना निकल उठा था, कितने गर्मी क दिनो मे हाथ पाँव वे तले ठण्डे होकर बफ बन गये थे। परन्तु आज सभी भय भावनाओ से इस तरह छुट्टी मिल गई थी कि यह जो सीताफल के वक्ष की डाली पर एक गिरगिट टकटकी बाँध कर शिकार को देख रहा था, उसकी ओर भी मेरी आँखें लगी हुई थी।

सवस्व खोकर राह पर खडे होना, यह उतना कठिन नही था—परन्तु हमारे वश म जो सच्चाई की ख्याति आज तीन पीढिया स चली आ रही थी, वह मेरे ही जीवन के ऊपर पछाड खाकर चूर चूर होने को चल दी, उसी लज्जा से ही मुझे दिन रात चैन नहीं था। यही क्या, आत्महत्या की बात भी मैंन अनक बार सोची थी। परन्तु आज जब काई पर्दा नही रहा, खाता पत्र क गुहा गह्वर से बदनामी की बातें

काले कीडो की भाँति कुलबुलाती हुई बाहर निकलकर, अदालत में होते हुए समाचार पत्रों में निकल गई, तो अब मेरा एक भारी बोझ उतर गया। पूर्वजो के सुनाम को ढोते हुए चलने के उत्तरदायित्व से रक्षा मिली। सभी जान गये कि मैं जुआ चोर हूँ—बच गया!

वकील वकीलों मे छेडाछाडी के दौरान सभी बातें प्रकट हो जाएँगी, केवल अधिक कलंक की बात प्रकट होने की संभावना नहीं है—कारण स्वयं धर्म के अतिरिक्त उसका और कोई फरियादी नहीं बचा है! इसीलिए उसे प्रकट कर देने के लिए ही आज मैंने कलम उठाई है।

मेरे पितामह उद्धवदत्त ने अपने मालिकों के वंश की—विपत्ति के दिनों में, स्वयं सम्पत्ति देकर रक्षा की थी। तभी से हमारे दारिद्र्य ने, अन्य लोगों के धन की अपेक्षा मस्तक ऊँचा कर लिया था। मेरे पिता सनातनदत्त डिरोजियो के छात्र थे। शराब के सम्बन्ध में उनका जैसा अद्भुत नशा था, सत्य के सम्बन्ध में उससे अधिक था। माँ ने हम लोगो से एक दिन नाई भाई की कहानी कही थी, सुन कर दूसरे दिन से ही—सन्ध्या के बाद हमारे मकान के भीतर जाना उन्होंने एक दम बन्द कर दिया। वे बाहर पढ़ने के कमरे में सोते थे। उस जगह दीवार पर टँगे हुए नक्शे सत्य बात कहते थे जनहीन विशाल मदान की खबर नहीं देते थे, एवं सात समुद्र पार करने वाली नदी की कहानी को फाँसी के तख्ते पर लटकाये रहते थे। सत्यता के सम्बन्ध में उनकी पवित्र वायु प्रबल थी। हम लोगों की जवाबदेही का अन्त नहीं था। एक दिन एक 'हुँकार' ने दादा की कोई वस्तु बेची थी। उसी की किसी एक पुडिया के एक धागे को लेकर मैं खेल रहा था। मगर पिताजी के हुक्म से—वह धागा हुकार को लौटा आने के लिए मुझे सडक पर दौडना पड़ा था।

हम लोग साधुता के जेलखाने में मनुष्य की लाल की रेडी पहनने वाले मनुष्य थे। मनुष्य कहने पर कुछ अधिक कहना हो जाएगा—हमारे अतिरिक्त और सभी मनुष्य थे केवल हम लोग मनुष्यता के दृष्टान्त स्थल थे हम लोगों का खेल कठिन था—मजाक की बातें नीरस वाक्य छोटे हँसी गमन व्यवहार निर्दोष। इसमें सत्यलीला में जो एक बड़ी कमी पड़ गई थी लोगों की प्रतिमा में वह भर रही थी। हमारे मास्टर ने लगातार मोनी तक सभी स्वीकार करते थे, कि दल घराने के लड़के सत्ययुग से अचानक रास्ता भूल कर धरती पर आ

गए है।

पत्थरो स ठास बनी हुई पक्की सडक म भी—जरा सी फांक पात ही, प्रकृति उसके भीतर स अपनी प्राण शक्ति की हरी जयपताका गा वठती है। मेरे नय जीवन म सभी तिथियाँ एकादशी हो उठी थी, परन्तु उन्ही के भीतर—उपवास की एक किसी फाँक से मैंन जरा सा अमत का स्वाद पा लिया था।

जिन कुछ लोगो के घरा मे हमारे खाने-आने की बाधा नही थी, उनमे से एक व्यक्ति थे अखिल बाबू। व ब्रह्मसमाज के आदमी थे, पिताजी उन पर विश्वास करते थे। उनकी लडकी थी अनुसूया, मुझस छँ वष छोटी थी। मैंन उसके शासनकर्त्ता का पद ले लिया था।

उसके शिशुमुख की वे घनी काली आँखो की पलकें मुझे याद हैं। उन्ही पलको की छाया से, इस पृथ्वी के आलोक की सम्पूण प्रखरता उसकी आखो मे जैसे कोमल होकर आ गई थी। किस स्निग्ध दष्टि से वह मुह की ओर दखती थी! पीठ के ऊपर हिलती हुई उसकी वह वेणी भी मुझे याद है, और याद है वे दोनो हाथ—जान क्या उनम बडी करुणा थी, वह जसे राह पर चलती हुई किसी दूसरे का हाथ पकडना चाहती थी, उसकी वे कोमल अँगुलिया जस पूणरूप से विश्वास करके, किसी का मुट्ठी म पकडाई दन के लिये राह दखती रहती थी।

उस दिन भी इसी तरह स उस देख सका था—यह बात कहना अधिक होगा। परन्तु हम लोग सम्पूण रूप से समझन के पहले भी बहुत कुछ समझ लेते हैं। अगाचर मन के भीतर अनक तस्वीरें खिच जाया करती हैं—अचानक किसी दिन किसी ओर स उजाला पडन पर वे सब आखो को दीख उठती है।

अनु के मन के दरवाजे पर सख्त पहरा नही था। वह चाहे जिस पर विश्वास कर लेती थी। पहले तो उसन अपनी बुढिया दासी से विश्वतत्व के सम्बन्ध म जो सब शिक्षाएँ प्राप्त की थी व मरे उस नक्शे टँगे हुए पढन के कमर के ज्ञान भण्डार की सीमा के मध्य स्थान पान योग्य नही थी दूसरे वह फिर स्वय की कल्पना के योग से कितनी ही सष्टि कर लेती थी, उसका ठिकाना ही नही था। इस जगह केवल उस पर अपना शासन चलाना पडता। केवल कहना हाता— अनु यह सब झूठी बातें है। यह जानती हो—इससे पाप लगता है!" सुनकर अनु की दोना आखा की काली पलको की छाया के ऊपर, और एक भय की छाया पड जाती। अनु जब अपनी छोटी बहिन का रोना रोकने के लिए

कितनी ही व्यथ की बातें कहती—उसे भुलाकर दूध पिलाने के समय, जिस जगह पक्षी नही है वहा भी 'पक्षी है'—कहकर उच्च स्वर से—'उड गया' की खबर देने का प्रयत्न करती तो मैं उसे बहुत गम्भीर होकर सावधान कर देता था, कहता था—ये जो झूठ बोल रही हो, उसे परमेश्वर सुन रहे हैं, इसी समय तुम्हे उनसे माफी मांगना उचित है।'

इस तरह से मैं उस पर जितना भी शासन करता, वह मेरे शासन को मान लेती थी। वह स्वय को जितना ही अपराधी अनुभव करती, मैं उतना ही खुश होता। बडे शासन से किसी मनुष्य को भला बनाने का सुयोग पाकर स्वय भी जो भला बना जाता है, वह मानो उसकी एक कीमत ही वापिस मिल जाती है। अनु भी मुझे स्वय के साथ और पृथ्वी के अधिकाश लोगो के साथ तुलना करके, अदभुत रूप से भला समझती थी।

क्रमश उम्र बडी हुई स्कूल से कालेज म गया। अखिल बाबू की पत्नी की मन ही मन इच्छा थी कि मेरे जैसे भले लडके के साथ अनु का विवाह कर दिया जाए। मेरे भी मन म यह था कि किसी कन्या के पिता की आखो से आखत हान योग्य लडका मैं नही हूँ। परन्तु एक दिन सुना कि बी० एल० परीक्षा पास एक नये मुसिफ के साथ अनु का सम्बन्ध पक्का हो गया है। हम लोग गरीब ह—मैं तो समझता था कि उसी स हम लोगो की कीमत अधिक हो गई है। परन्तु कन्या के पिता के हिसाब की प्रणाली स्वतन्त्र थी।

विसर्जन की प्रतिमा डूब गई। एकदम जीवन की किसी ओट म वह जा पडी। बचपन से जो मेरी सबसे अधिक परिचित थी, वह एक दिन म ही हजार लाख अपरिचित मनुष्यो के समुद्र के भीतर डूब गई। उस दिन मन को कसा लगा उसे मन ही जानता है। परन्तु विसर्जन के बाद भी क्या मैं यह पहचान सका कि वह मेरी देवी की प्रतिमा है? मा नही! अभिमान उस दिन चोट खाकर और भी लहरें उठाने लगा। अनु को तो हमेशा से छोटी ही देखता आया था उस दिन अपनी योग्यता की तुलना म—उसे और भी छोटे रूप म देखा। मेरी श्रेष्ठता की पूजा नही हुई—उस दिन मैंने इसी को ससार म सबसे बडा अकल्याण समझा।

जाने दो यह समझ म आ गया कि ससार म केवल सच्चा होने से ही कोई लाभ नही है। मैंने प्रण किया—इतना रुपया कमाऊँगा कि एक दिन अखिल

बाबू को ही कहना पडेगा—'बड घोखे म आ गया।' खूब जमकर मैंन 'काम का आदमी' होन का प्रबन्ध किया।

काम का आदमी बनन के लिए सबसे बडा काम अपने ऊपर अगाध विश्वास है उस दिशा म मुझम कभी कोई कमी नही थी। लेकिन यह वस्तु मत्रामक होती है। जो स्वय पर विश्वाम करता है, अधिकाश व्यक्ति उसी पर विश्वास करते है। व्यापारिक बुद्धि मुझम जन्मजात एवं असाधारण है। इम सभी मानने लग।

व्यापार सम्बन्धी साहित्य एव अखबारा से मेरी शेल्फ एव टेबुल भर उठी। मकान की मरम्मत, बिजली की बत्तिया एव पखा का कौशल किस वस्तु का क्या भाव है, बाजार-भाव के उठन गिरन का गूढ तत्व एक्सचज का रहस्य, प्लान, ऐस्टीमेट आदि विद्याओ म मजलिस जमान लायक उस्तादी मैंन एक तरह से मार ली।

यद्यपि मैं रात दिन व्यापार की बातें करता फिर भी किसी तरह किसी काम म नही उतरा, इसी तरह म बहुत दिन काट दिए। मरे भक्तगण जब भी मुझसे किसी एक स्वदेशी कम्पनी मे योग दने का प्रस्ताव करत, मैं समझा दता कि जितने भी कारोबार चल रह हैं—किसी क भी काम की धारा विशुद्ध नही है सभी क भीतर दोप भर हुए है - इसके अतिरिक्त, सत्य का बचा कर चलन म, उन लागा के साथ मिलना सभव नही है। सचाई की लगाम म थोडी-बहुत ढील दिए बिना व्यापार नहीं चलना—ऐसी बात मेरे किसी मित्र द्वारा कह जान प र उसके साथ मरा विच्छेद हो गया।

मत्यु काल तक मे सर्वाङ्गसुन्दर प्लान, ऐस्टीमेट एव प्रास्पक्ट लिखकर अपन यश को अक्षुण्ण रख सकता था। परन्तु दुर्भाग्य स प्लान बनाना छोडकर खुद काम करने लगा। एक ता पिता की मत्यु हा जान से, मेरे क धा पर ही गहस्थी का दायित्व आ गया था, उसके अलावा एक और उपसग आ जुटा—वह बात भी कहे दना हूँ—

प्रसन्न नामक एक लडका मरे साथ पढता था। वह जसा मुखर था वसा ही निन्दक था। हमारी पतृक सत्यता की ख्याति पर चाट करन का उस भारी सुयोग मिल गया था। पिताजी ने मरा नाम रखा था सत्यधन। प्रसन्न हम लागो की दरिद्रता को लक्ष्य करके कहता—'पिता न दत समय दिया मिथ्याधन, और नाम के समय दिया सत्यधन—इसकी अपेक्षा सचमुच म दकर, नाम का झूठमूठ

ही द देन तो काई नुकसान नही होता।" प्रसन्न क मुह से मैं बहुत ही डरता था।

बहुत दिन तक उससे भेंट ही नही हुई। इस बीच वह बमा म, लुधियाना मे, श्रीरङ्गपत्तन म अनक रकम केरकम के काम करके लौट आया। वह अचानक ही कलकत्ते म आकर मुझे पा बठा। जिसक मजाक स मैं हमेशा डरता आया था, उसकी श्रद्धा पाना क्या कम सुखद था!

प्रस न न कहा— भाई, मरी यह बात रही। देख लेना—एक दिन तुम दूसर मतिशील अथवा दुर्गाचरण ला* न बन जाओ ता मैं बहूबाजार क मोड स बागबाजार के माड तक बराबर सबके सामन नाक रगडत चलन का तयार हूँ।

प्रसन्न क मुख की इतनी बडी बात—कितनी बडी हो सकती है इसको लाग प्रसन्न के साथ एक क्लास म नही पढे ह व समझ ही नही सकते! उस पर भी प्रसन्न दुनिया को खूब अच्छी तरह पहचान आया है, उसकी बात की कीमत है।

वह बोला—'काम को समझन वाल लाग मैंन ढरा दख है दादा—परन्तु व ही सबस अधिक मुसीबत म पडते हैं। व लोग बुद्धि क जोर स ही किस्मत का मात करना चाहत ह मगर भूल जात ह कि माथ क ऊपर धम भी है। परन्तु तुमम तो मणि काचन का योग है। धम का भी मजबूती स पकडे हा फिर कम की बुद्धि म भी तुम पक्के हो!

उस समय व्यावसायिक पागलपन की बात भी चल पडी। हम दाना अच्छी तरह निश्चित कर बठे कि वाणिज्य क अतिरिक्त दश की मुक्ति नही है, एव यह भी निश्चित रूप से समझ म आ गया कि केवलमात्र मूलधन का प्रबन्ध होतेही—वकील, मुख्तार डॉक्टर, शिक्षक, छात्र एव छात्रा क बाप दादा—सभी एक दिन म ही, सब तरह के ही व्यवसाया का पूरी ताकत स चला सकत ह।

मैंने प्रस न स कहा— मरे पास सहारा नही है।'

वह बोला— विलक्षण! तुम्हारे पास पनक सम्पति का क्या अभाव है!"

---

* कलकत्ते के धनी लागा के नाम।

उस समय अचानक याद आया—शायद प्रसन्न इतने दिनो से मेरे साथ एक लम्बा मजाक करता आ रहा है।

प्रसन्न ने कहा—मजाक नही है दादा! सत्य ही तो लक्ष्मी का स्वर्ण कमल है! आदमी के विश्वास पर ही कारबार चलता है, रुपया से नही!'

पिता के जमाने से ही हमारे मकान म, मुहल्ले की कोई कोई विधवा स्त्रियाँ अपने रुपये अमानत के तौर पर रख जाती थी। व सूद की आशा नही करती थी, केवल यही समझकर निश्चिन्त थी कि स्त्रियो के सभी जगह ठगे जाने की आशका है, केवल हमारे घर म नही है!

हमने उन अमानती रुपयो को लेकर स्वदेशी एजेन्सी खोल दी। कपडा कागज स्याही, बटन, साबुन जो भी आते, बिक जाया करते—एकदम टिड्डियो की तरह खरीददार आने लगे।

एक बात है—विद्या जितनी ही बढती है, उतना ही यह समझ मे आता है कि मैं कुछ भी नही जानता! रुपया की भी वही दशा है। रुपये जितने बढते हैं, मन म होता है—'रुपये नही है' यही कहना पडेगा। मेरे मन की उस तरह की हालत मे ही प्रसन्न न कहा कि ठीक जो कह रहे हो—वह नही है, और मुझसे कहलवा लिया कि खुदरा दूकानदारी के काम म जीवन लगाना, जीवन को व्यर्थ नष्ट करना है। जो व्यापार पृथ्वी भर म फैला हो, वही तो व्यापार है! देश के भीतर ही जो रुपया रहता है वह कोल्हू के बैल की भाति आगे नही बढता—केवल घूम घूमकर मर जाता है।

प्रसन्न ऐसी भक्ति से गदगद हो उठा, जैसे ऐसी नयी और गहरे ज्ञान की बात उसने जीवन मे और कभी नही सुनी हो। उसके बाद मैंने उसे—भारतवर्ष मे अलसी के व्यवसाय का सात वर्ष का हिसाब दिखाया। किस जगह अलसी कितने परिमाण मे जाती है, कहाँ क्या भाव रहता है, सबसे अधिक ऊँचा मूल्य कहाँ रहता है, कम कहाँ रहता है, खेतो मे उसके दाम क्या होते हैं जहाज-घाट पर उसका क्या मूल्य होता है, किसानो के घर से खरीदकर एकदम समुद्र-पार भेजने का प्रबन्ध कर सकने पर, एक ही छलाँग मे कितना लाभ होना सभव है—कही पर तो इस बारे म रेखाएँ खीचकर, कही पर उसे सैकडा की सख्या म हिसाब के अक लगाकर, कही पर अनुलोम प्रणाली से, कही पर प्रतिलोम प्रणाली से—लाल एव काली स्याही से, अत्यन्त परिष्कृत अक्षरो मे, लम्बे कागज

के पाँच सात पृष्ठ भरकर जिस समय प्रसन्न के हाथ म दिए उस समय वह मेरे पाँवा की धूलि लेन लगा और क्या !

वह बोला— मेरे मन म विश्वास था कि मैं यह सब कुछ कुछ समझता हूँ, परन्तु आज से दादा, मैं तुम्हारा शागिर्द हो गया हूँ !'

फिर जरा सा प्रतिवाद भी किया। बोला—'यो ध्रुवाणि परित्यज्य—याद है तो ? क्या पता, हिसाब म भूल भी रह सकती है !'

मेरी जिद चढ गई। भूल नही है—कागज म इसके अकाटय प्रमाण बढन लग। नुक्सान जितनी तरह के भी हो सकते थे—सबको पक्तिबद्ध खडा करके भी, मुनाफे को किसी तरह भी बीस पच्चीस प्रतिशत से नीचे उतारा नही जा सका।

इस तरह से दूकानदारी की पतली नदी मे बहकर, जिस समय हम कारबार के समुद्र म गिरे, उस समय वसा कवल मेरी ही जिद्द के कारण हुआ है—ऐसा एक भाव दिखाई दिया। जिम्मेदारी मेरी ही थी !

एक तो दत्तवश की सच्चाई, उस पर भी ब्याज का लोभ—अमानत के रुपये बढने लगे। स्त्रिया गहन बेचकर रुपया देन लगी।

काम म प्रवेश करके फिर हम दिशा नही मिली। प्लान मे जो वस्तुएँ दिव्य लाल एव काली स्याही की रेखा स विभाजित थी काम के भीतर वह विभाग ढूढ पाना भी मुश्किल था। मेरे प्लान का रसभङ्ग हो रहा था, इसलिए काम म सुख नही मिलता था। अन्तरात्मा स्पष्ट समझने लगी कि काम करने की क्षमता मुझम नही है, यहा तक कि उसे कबूल करने की क्षमता भी मुझमे नही है। काम स्वभावत प्रसन्न के हाथ म ही जा पडा हालाकि—मैं ही कारबार का हर्ता कर्ता और विधाता हूँ—इसके अतिरिक्त प्रसन्न के मुह पर और बात ही नहीं थी। उसका मतलब एव मेरे हस्ताक्षर, उसकी दक्षता एव मेरी पैतक ख्याति—इन दोना का मिलाकर, व्यवसाय चारो पाव उठाकर किस माग पर दौड रहा है यह समझ म ही नही आया।

देखते देखते मैं ऐसी जगह आ पडा जहा तल भी नही मिल रहा था, कूल भी नही दीख रहा था। उस समय डाँड को छोडकर यदि सच्ची बात प्रकट कर देता तो सचाई की रक्षा हो जाती—परन्तु ख्याति की रक्षा नही होती। मैं अमानती रुपया का ब्याज तो जुटाता रहा परन्तु यह मुनाफे मे से नही था। इस

लिए ब्याज की दर बढाकर, अमानत (ऋण) की मात्रा बढाता रहा।

मेरा विवाह बहुत पहले हो चुका था। मैं जानता था कि घर गृहस्थी के अतिरिक्त मेरी पत्नी का और किसी तरफ कोई ख्याल नही है। मगर अचानक देखा कि अगस्त्य की भाँति एक चुल्लू मे रुपये के समुद्र को सोख लेने का लोभ उसे भी है। मैं नही जानता कि किस समय मेरे ही मन से निकलकर यह हवा हमारे सम्पूर्ण परिवार म बहना आरम्भ कर चुकी थी। हमारे नौकर, दासी, दरबान तक हमारे कारबार म रुपये डाल रहे थे। मेरी पत्नी भी मुझे पकड बैठी कि वह भी थोडे बहुत गहने बेचकर मेरे कारबार मे रुपये लगाएगी। मैंने भर्त्सना की, उपदेश दिया। बोला—लोभ जैसा बैरी कोई नही है! स्त्री के रुपये मैंने नही लिए।

एक अन्य व्यक्ति के रुपये भी मैं नही ले सका।

अनु एक लडके को लेकर विधवा हो गई थी। 'जैसा कृपण, वैसा ही धनी—के रूप मे उसके पति की प्रसिद्धि थी। कोई कहता—उसके डेढ लाख रुपये जमा हैं, कोई कहता—और भी बहुत अधिक हैं! लोग कहते थे कि कृपणता म अनु अपने पति की सहधर्मिणी थी। मैं सोचता था—'वह तो होगी ही! अनु ने वैसी शिक्षा और साथ तो पाया ही नही।'

विरासत म मिले इन रुपयो को लगा देने के लिए उसने मेरे पास अनुरोध भेजवाया। लालच हुआ, जरूरत भी खूब थी, परन्तु डर कर उससे भेंट करने तक नही गया।

एक बार जिस समय एक बडी हुण्डी की मियाद समीप थी, उस समय प्रसन्न ने आकर कहा—'अखिल बाबू की लडकी के रुपये इस बार लिये बिना नही चलेगा।'

मैं बोला—'जैसी हालत है, उसमे मेरे द्वारा सेंध लगाना (चोरी करना) सम्भव है, परन्तु उन रुपयो को मैं नही ले सकूगा।'

प्रसन्न ने कहा—'जहाँ से तुम्हारा भरोसा चला गया है, वहाँ से ही कारबार म नुकसान जा रहा है। कपाल ठोकने लगने पर कपाल की ताकत भी बढ जाती है।'

मगर मैं किसी तरह भी राजी नही हुआ।

दूसरे दिन प्रसन्न ने आकर कहा—'दक्षिण से एक विख्यात मराठी ज्योतिषी

आये हैं, उनके पास जन्मपत्र लेकर चलो।'

सनातन दत्त के वश में जन्मपत्र मिलाकर भाग्य-परीक्षा! दुर्बलता के दिनों में मानव प्रकृति के अन्तरतम में, प्राचीन युग की असभ्यता प्रबल हो उठती है। जो दृष्ट है, वह जिस समय भयंकर हो उठता है, उस समय जो अदृष्ट है, उसे छाती से चिपटा लेने की इच्छा होती है। बुद्धि पर विश्वास करके कोई किनारा नहीं मिल रहा था, इसीलिए निर्बुद्धिता की शरण ली, जन्म क्षण और सन तारीख लेकर ज्योतिषी के पास गया।

उनसे सुना कि मैं सर्वनाश के अन्तिम किनारे पर आ खड़ा हुआ हूँ। परन्तु इस बार वृहस्पति अनुकूल हैं—इस समय वे किसी एक स्त्री के धन की सहायता से मेरा उद्धार करके, अतुल ऐश्वर्य से मिला देंगे।

इसमें प्रसन्न का हाथ है—ऐसा सन्देह मैं कर सकता था। परन्तु सन्देह करने की किसी तरह इच्छा ही नहीं हुई। घर लौटकर प्रसन्न ने मेरे हाथों में एक पुस्तक देते हुए कहा—'खोलो तो सही!' खोलते ही जो पृष्ठ निकला, उस पर अँग्रेजी में लिखा था—व्यापार में आश्चर्यजनक सफलता!

मैं उसी दिन अनु से मिलने गया।

पति के साथ देहात से लौटते समय—बार-बार मलेरिया बुखार आ जाने से अनु की इस समय ऐसी दशा थी, कि डॉक्टर लोग डर रहे थे कि उसे क्षय रोग हो गया है। किसी अच्छी जगह जाने के लिए कहने पर वह कहती—मैं तो आज या कल मरूँगी ही, परन्तु अपने सुबोध के रुपयों को अपने प्राणों से लगाकर पाल रही थी।'

मैंने जाकर देखा—अनु के रोग ने उसे इस पृथ्वी से अलग कर दिया है। मैं जैसे उसे बहुत दूर से देख रहा हूँ। उसका शरीर एकदम स्वच्छ होकर, भीतर से एक आभा बाहर निकल रही है। जो कुछ स्थूल है उस सबको क्षय करके, उसके प्राण मृत्यु के बाहरी दरवाजे पर—स्वर्ग के उजाले में आकर खड़े हो गये हैं। और वही हैं, उसकी दोनों करुण आँखों की घनी पलकें। आँखों के नीचे स्याही फैल जाने से लगता है—जैसे उसकी दृष्टि के ऊपर जीवनान्तकाल की सन्ध्या की छाया उतर आई है। मेरा मन स्तब्ध हो गया, आज वह देवी जैसी लगने लगी।

मुझे देखकर—अनु के मुख पर एक शान्त प्रसन्नता की छाया पडी। वह बोली—'कल रात म मेरी तक्लीफ जब बढ गई थी, उस समय से तुम्हारी बाबत ही सोच रही थी। मैं जानती हूँ कि मेरे जीवन के दिन अधिक नहीं हैं। परसो भैयादूज का दिन है, उम दिन मैं तुम्ह आखिरी भयादूज द जाऊँगी।'

रुपये की बात उसन कुछ भी नही कही है। सुबोध को बुलवा लिया। उसकी उम्र सात वष की थी। दोनो आखें माँ की तरह थी। सब मिलाकर उसम कैसा एक क्षणिकता का भाव था—पथ्वी जैसे पूरे परिमाण म दूध पिलाना भूल गई थी। मैंन उसे गोद म खीचकर उसके मस्तक का चुम्बन लिया। वह चुपचाप मेरे मुह की आर देखता रहा।

प्रसन्न ने जिज्ञासा की—'क्या हुआ?'

मैं बोला—आज मुझे समय नही मिला।'

वह बोला—'मियाद म अब केवल नौ दिन ही बाकी हैं।'

अनु का वह मुख, वे मत्यु सरोवर के पद्म, देखने के बाद स सवनाश मुझे वैसा भयकर नही लग रहा था।

कुछ समय स हिसाब किताब देखना बन्द कर दिया था। किनारा दिखाई नही पड रहा था, इसीलिए भय से आखें बन्द किये बैठा था। मुर्दा सा बनकर हस्ताक्षर किये जा रहा था, समझने की चेष्टा नही करता था।

भैयादूज के दिन सुबह ही, एक हिसाब की चुम्बक पद लेकर, जबदस्ती प्रसन्न ने मुझे कारबार की वतमान अवस्था समझा दी। देखा—मूलधन का समस्त तल एकदम सूख गया है। अब केवल उधार के रुपयो से पानी खीचकर चले बिना नौका डूब जाएगी।

कौशल से रुपयो की बात उठान का उपाय सोचते सोचते भैयादूज के निमन्त्रण म चला। दिन वहस्पतिवार था। इस समय हतबुद्धि की चपेट मे आकर वहस्पतिवार मे भी भय नही कर पाया। जो मनुष्य अभागे होते है अपनी बुद्धि क अतिरिक्त और कुछ भी मानने म उन्हे भरोसा नही हो पाता। जाते समय मन बहुत खराब हुआ।

अनु का ज्वर बढ गया था। देखा—वह बिछौने पर सो रही है। नीचे फश पर चुप बठा हुआ सुबोध अँग्रेजी के अखबार मे से तस्वीरें काटकर, आटा लगा कर एक कापी मे चिपका रहा था।

बार बेला बचाने के लिए समय से बहुत पहले ही आ गया था। बात थी कि अपनी स्त्री भी साथ लाऊँगा। परन्तु अनु के बारे म, मेरी स्त्री के मन क कान म शायद कुछ ईर्ष्या थी, इसीलिए उसन आते समय बहाना बनाया था, मैंने भी कोई हठ नही की थी।

मेरे भीतर किसी दिन जो माधुय दिखाई दिया था, उसी को अपन स्वर्णिम प्रकाश मे गलाकर, आकाश न उस रोगी के बिछौन के ऊपर बिछा दिया था। कितनी ही बातें आज उठ पडी थी। वे ही सब अनेक दिनो की अत्यत छोटी बातें, मेरे आसन्न सवनाश के अतिरिक्त, आज कितनी ही बडी हो उठी। कारबार का हिसाब भूल गया।

कमरे मे आकर बठते ही, उसन एक टीन का बक्स मरे पास लाकर रख दिया। बोली—'सुबोध के लिए जो कुछ इतन दिनो तक बचा रखा था, तुम्हे दे दिया है, और उसके साथ ही सुबोध को भी तुम्हारे हाथो म दे रही हूँ। अब निश्चिन्त होकर मर सकूगी।'

मैं बोला — अनु तुम्हारी दुहाई है रुपये मैं नही लूगा! सुबोध की देखभाल मे कोई कमी नही होगी परन्तु रुपये किसी और के पास रख दो।'

अनु ने कहा—'इन रुपयो को लेन के लिए कितन ही लाग हाथ फलाए बठे हैं। तुम क्या उन्ही लोगो के हाथ मे दे देने के लिए कहत हो?'

म चुप रह गया। अनु बोली—'एक दिन ओट मे सुना था—डाक्टर न कहा था कि सुबोध के जैसे शारीरिक लक्षण है, उसके अधिक दिन बचन की आशा नही है। सुनने के समय से ही डरी हुई रहती हूँ। आज आखिरी आशा लेकर मरूँगी कि डॉक्टर की बात गलत हो सके। सैंतालीस हजार रुपये कम्पनी के दस्तावेजो मे जमा हैं—और भी कुछ इधर उधर हैं। इन रुपयो से सुबोध के पथ्य और चिकित्सा का काम अच्छी तरह चल सकेगा। और यदि भगवान अल्पायु मे ही उसे बुला लें, तो ये रुपये उसके नाम से किसी एक अच्छे काम म लगा देना।'

मैंन कहा—'अनु मुझ पर तुम जितना विश्वास करती हो, मैं स्वय पर उतना विश्वास नही करता।'

सुनकर अनु जरा सा हँस दी। मेरे मुह से ऐसी बात झूठी नम्रता जसी सुनाई देती थी।

विदा के समय अनु ने बक्स खोलकर, कम्पनी के कागज और कुछ नोटो की गडिडयाँ सभलवा दी। उसकी वसीयत मे देखा तो लिखा था—अपुनक और नावालिग अवस्था मे सुबोध की मत्यु हो जाने पर, मैं उसकी सम्पत्ति का उत्तरा धिकारी रहूँगा।

मैं बोला—'मेरे स्वाथ के साथ अपनी सम्पत्ति को इस तरह क्या सम्बधित कर दिया है ?

अनु न कहा—'मैं जो जानती हूँ कि मेर लडके के स्वाथ मे तुम्हारा स्वार्थ कभी बाधा नही देगा।'

मैंन कहा—'किसी भी मनुष्य पर इतना विश्वास करना, काम का दस्तूर नही है।'

अनु ने कहा—मैं तुम्ह जानती हूँ धम को जानती हूँ, काम का दस्तूर समझने की शक्ति मुझमे नही है।

बक्स के भीतर गहने थे, उन्ह दिखाकर बोली—'सुबोध यदि जीवित रहे और विवाह करे तो वहू को ये गहन और मेरा आशीर्वाद देना, और यह पन्ने की माला बहूरानी (अपनी पत्नी) को देकर कहना—सिर की शपथ है, व इस ग्रहण कर लें।

यह कह कर अनु न जब पथ्वी पर सिर रखकर मुझे प्रणाम किया तो उसकी दोना आँखो मे पानी भर आया। उठकर चटपट खडी होकर वह मुह फिरा कर चली गई। यही मुझे उसका अन्तिम प्रणाम मिला था। इसके दो दिन बाद ही सन्ध्या के समय अचानक श्वास बन्द होकर उसकी मत्यु हो गई—मुझे खबर भेजन का समय भी नही मिला।

भैयादूज का निमन्त्रण निभाकर, टीन का बक्स हाथमें लेकर, गाडी मे चल कर घर दरवाजे पर जसे ही उतरा, तो देखा कि प्रसन्न प्रतीक्षा कर रहा है उसने पूछा—दादा, खबर अच्छी तो है ?'

मैं बोला—इन रुपया म कोई भी हाथ नही लगा सकेगा।'

प्रसन्न ने कहा—'किन्तु—'

मैं बोला—'सो मैं कुछ नही जानता—जो होना है वह हो, य रुपय म व्यवसाय म नही लगेंगे।'

प्रसन्न बोला—'तो तुम्हारे अन्त्येष्टि सस्कार मे लगेंगे।'

अनु की मृत्यु के बाद म, सुबोध मेरे मकान म आकर मेरे लडके निरयघन का साथी बन गया।

जो लाग कहानिया की पुस्तकें पढ़ते हैं, व साचत हैं कि मनुष्य के मन म बडे बडे परिवतन धीरे धीर होत है। मगर हाता ठीक उल्टा है। तम्बाकू सुलगान की टिकिया को अग्नि पकडा म दर लगती है, परन्तु बडी बड़ी लपटें हू-हू करके जल उठती हैं। मैं यह बात कहू कि बहुत थाडे समय क भीतर ही सुबोध के प्रति मेरे मन का विद्वेष दखत-देखत बढ़ गया, तो सभी लाग उसकी विस्तृत कफियत चाहग। सुबोध अनाथ था वह बडा दुबला छरहरा था, वह दखन मे भी सुन्दर था, सबके ऊपर सुबोध की माँ स्वय अनु थी—परन्तु उसकी बातचीत, चलना, खेलकूद—सभी कुछ मानो मुझे दिन रात कुरदन लगे।

असल म, समय बहुत खराब आ गया था। सुबोध के रुपय मैं किसी तरह भी नहीं लूगा एसी प्रतिज्ञा थी यद्यपि रुपया लिए बिना चल नही सकता था, ऐसी हालत थी। अन्त म एक दिन महा मुसीबत म पडकर मैंन कुछ रुपये ले लिए। इससे मेरे मन की मशीन ऐसी बिगड गई कि सुबोध के सामन मुह दिखाना मुझे भारी हो गया। पहले उसमे बचा बचा रहन लगा। उसके बाद उसपर बुरी तरह से नाराज रहना आरम्भ कर दिया।

नाराज हान का पहला कारण बना उसका स्वभाव। मैं स्वय ही व्यस्तवागीश था, सब कामो को चटपट कर डालन की मुझे आदत थी। परन्तु सुबोध का न जाने कैसा स्वभाव था कि उससे प्रश्न करने पर वह उत्तर दे ही नही पाता था—जिस जगह वह है, उस जगह जैसे वह नही लगता, जस व अन्यत्र कही हो। सडक के किनार वाली खिडकी के छज्जे पर बैठा हुआ वह घण्टे के बाद घण्टे काट देता—क्या दखता, क्या सोचता, इस वही जाने। मुझे यह असह्य लगता। सुबोध बहुत समय से रुग्ण मा के पास रह कर बडा हुआ था, समवयस्क या खेल का साथी कोई नही था, इसीलिए वह बराबर अपन ही मन को लकर, स्वय ही खेल किया था। इन सब लडको की यही कठिनाई होती है कि य लोग जब दुख पाते ह, तब अच्छी तरह से रोना भी नही जानत और शोक को भूलना भी नहीं जानत। इसीलिए सुबोध को पुकारन पर फौरन उसकी आहट नही मिल पाती, एव काम करने के लिए कहने पर वह भूल जाता। अपनी चीजो को वह हमेशा खो दता और फिर बगुले की तरह चुप रहकर मुह की ओर देखता रहता—जैसे

सुबोध है अवश्य, परन्तु वह तो छाया है—न होने जैसा ही कहा जाएगा। जिन रुपयों को अवश्य ही प्राप्त करूंगा, उन्हें पहले से ही खर्च कर देने में अधम नहीं होगा।

अल्पायु से मुझे वात की बीमारी थी। कुछ दिनों से वह बहुत बढ़ गई थी। जो लोग काम के होते हैं उन्हें यदि स्थिर रखा जाए, तो वे अपने चारों ओर के सभी लोगों को अस्थिर कर डालते हैं। उन कुछ दिनों में मेरी स्त्री, मेरा लड़का, सुबोध, घर के नौकर-चाकर— किसी को भी शांति नहीं रही थी।

इधर मेरी परिचित जिन कुछ विधवा स्त्रियों ने मेरे पास रुपये रख छोड़े थे, कई महीनों से उन्हें ब्याज मिलना बन्द था। पहले ऐसा मैंने कभी नहीं होने दिया था। इसीलिए वे सब उद्विग्न होकर मुझसे तकाजा कर रही थीं। मैं प्रसन्न से तकाजा करता था, मगर वह केवल दिन टाल रहा था। अन्त में जिस दिन निश्चित रूप से देने की बात थी, उस दिन सुबह से ही तकाजे वाली बैठी थीं, प्रसन्न का पता नहीं था।

नित्य से बोला—'सुबोध को बुला दो।'

वह बोला— सुबोध सो रहा है।'

मैं अत्यन्त नाराज होकर बोला—'सो रहा है! ग्यारह बज रहे हैं अब भी वह सो रहा है?'

सुबोध डरता डरता आ उपस्थित हुआ। मैं बोला—'प्रसन्न को जहाँ भी पाओ, बुला लाओ!'

सदैव मेरी फरमाइश पर मेहनत करके, सुबोध इन सब कामों में पक्का हो गया था। किसे कहाँ ढूंढना होगा—सब कुछ उसे मालूम था।

एक बज गया, दो बज गये, तीन हो गये, सुबोध फिर भी नहीं लौटा। इधर जो औरतें धरना दिए बैठी थीं, उनकी भाषा का ताप एवं वेग बढ़ उठने लगा। मैं किसी तरह भी सुबोध की ढिलमिल चाल को मिटा नहीं सका था। दिन जितना बीतता था, उतनी ही उसकी ढील और भी जैसे बढ़ उठती थी। आजकल वह बैठे पान पर उठना नहीं चाहता था, शाम को पाँच बजे ही वह बिछौने पर लेट जाता था, सुबह उसे बिछौने से जबर्दस्ती उठा देना पड़ता था, चलने के समय जैसे पाँव से पाँव जोड़ कर चलता था। मैं सुबोध को कहता था—जन्म का आलसी, आलसीपन का महामहोपाध्याय! वह लज्जित होकर चुप रह जाता। एक दिन

मैंन उससे पूछा था—'बता तो सही, प्रशान्त महासागर के पार कौन-सा महासागर है?' जब वह जवाब नही दे पाया तो मैं बोला 'वह तुम हो, आलस्य महासागर!' जहाँ तक होता, सुबोध कभी मेरे सामने रोता नही था, परन्तु उस दिन उसकी आखो से झर झर कर पानी गिरने लगा। वह मार गाली सब कुछ सह सकता था, परन्तु व्यग्य उसके मर्मस्थल पर जाकर चोट करता था।

समय बीता। रात हुई। घर म किसी ने बत्ती नही जलाई। मैंने चीख-पुकार की, किसी ने उत्तर नहीं दिया। घर के सभी लोगो पर मुझे नाराजी हुई। उसके बाद अचानक मुझे सन्देह हुआ, कि शायद प्रसन्न ने ब्याज के रुपए सुबोध के हाथ म दे दिए होगे और सुबोध उन्हे लेकर भाग गया है! मेरे घर मे सुबोध को कोई आराम नही था—वह मैं जानता था। बचपन से ही मैं आराम नामक वस्तु को अन्याय ही समझता रहा था, विशेषकर छोटे लडको के लिए! इसीलिए इस बारे में मेरे मन म कोई परिताप नही था। परन्तु उसी के कारण सुबोध रुपए लेकर भाग जा सकता है—यह सोचकर मैं उसे कपटी, अकृतज्ञ कहकर मन-ही-मन गाली देने लगा। इसी उम्र मे चोरी आरम्भ कर दी, इसकी गति क्या होगी! मेरे पास रहकर, हमारे मकान मे निवास करके भी उसकी ऐसी शिक्षा कैसे हुई? सुबोध रुपए चुराकर भाग गया है—इस बारे म मेरे मन मे कोई सन्देह नही रहा। इच्छा हुई कि पीछा करके उसे जहाँ भी पाऊँ, पकड लाऊँ, एव आपाद मस्तक एक बार कसकर मार लगाऊँ!

इसी समय मेरे अँधेरे कमरे मे सुबोध ने आकर प्रवेश किया। उस समय मुझे ऐसा क्रोध आ रहा था कि चेष्टा करने पर भी मेरे कण्ठ से कोई बात नहीं निकली।

सुबोध बोला—'रुपए नही मिले!'

मैंने सोचा कि सुबोध से रुपए लाने के लिए तो मैंने कहा नही था, तब उसने क्यो कहा कि 'रुपए नहीं मिले!' अवश्य ही इसने रुपए चुरा लिए हैं—कही छिपा दिये हैं! ये सब भले लगने वाले लडके ही भारी शैतान होते है।

मैंने बडे कष्ट से गले को साफ करके कहा—'रुपये बाहर निकाल दे!'

उसने भी उद्धत होकर कहा—'नही, नही दूगा! तुम जो कर सकते हो, करो!!'

मैं अब किसी तरह भी स्वय को नही सँभाल पाया। हाथ के पास लाठी

थी, जोर से उसके सिर को लक्ष्य करके मारी। वह पछाड खाकर गिर पडा। उस समय मुझे डर लगा। उसका नाम लेकर पुकारा, उसन उत्तर नही दिया। पास जाकर दख सकू—ऐसी शक्ति मुम म नहीं रही। किसी तरह भी मैं उठ नही सका। टटोलते हुए जाकर देखा—जाजिम भीग गई थी। यह तो रक्त था। क्रमश रक्त फैलन लगा और मेरे चारा आर की जमीन रक्त से भीग उठी। खुली खिडकी के बाहर से सन्ध्यातारा दिखाई दे रहा था मैंन झटपट आँखें फेर ली। मुझे अचानक न जाने कैसे याद आ गया कि यह सन्ध्या-तारा, भयादूज का चन्दन का तिलक है। सुबोध के ऊपर मेरा इतने दिना का जो अनुचित विद्वेष था, वह एक क्षण मे ही नष्ट हो गया। वह जसे अनु के हृदय का धन है माँ की गोद से भ्रष्ट होकर वह मेरे हृदय म माग ढूढने को आया था। मैंन यह क्या किया! यह क्या किया!! भगवान मुझे यह कैसी बुद्धि द दी! मुझे रुपयो की क्या आवश्यकता थी?! अपने सब कारबार को खत्म करके ससार म केवल इसी रुग्ण बालक के प्रति यदि अपन धम को बचाए रहता तो मैं रक्षा पा लेता!

क्रमश भय होन लगा कि कोई आ जाएगा, और मैं पकडा जाऊँगा! प्राण पण से इच्छा होन लगी, कि कोई न आए, दीपक भी न जलाए यह अँधेरा क्षण भर के लिए भी दूर न हो, कल सूय भी न निकले, सारा ससार एकदम मिथ्या होकर, इसी तरह से घना काला होकर, मुझे और इस लडके को हमेशा के लिए ढाके रहे।

तभी पाँव का शब्द सुना। लगा—किसी तरह से पुलिस को खबर मिल गई है। कौन सी झूठी कैफियत दूगा, झटपट उसी को सोच लन की चेष्टा की, परन्तु मन कुछ भी नही सोच सका।

धडाम करके दरवाजा खुल गया, घर मे किसी न प्रवश किया।

मैं सिर से पाव तक चौंक उठा। देखा उस समय भी धूप थी। मैं सो गया था, सुबोध के घर म घुसते ही नींद टूट गई थी।

सुबोध हाटखोला, बडाबाजार, बेलेघाटा आदि जहाँ जहाँ भी प्रमन्न के मिलने की सम्भावना थी, सारे दिन सब जगह ढढता रहा था। हर तरह की कोशिश के बावजूद उसे ला नही सका था—इस अपराध के भय से उसका मुह म्लान हो गया था। इतन दिनों बाद मैंन देखा—कैसा सुन्दर है उसका मुह, कैसी करुणा से भरी हुई हैं उसकी दोनो आँखें!

मैं बोला—'बेटा सुबोध, आ—मेरी गोद मे आ जा !'

वह मेरी बात समझ ही नही सका, उसने सोचा—मैं व्यग्य कर रहा हूँ। फटी फटी आखा से वह मेरे मुह की ओर देखता रहा, और कुछ देर खडे रहन के बाद मूच्छित हाकर गिर पडा।

क्षण भर म मेरी वात रोग की पगुता न जाने कहाँ चली गई। मैंने दौडकर, गोद मे लेकर उसे बिछौने पर लेटा दिया। सुराही म पानी था, उसके मुँह और माथे पर छीटे दिए, मगर किसी तरह भी उसे होश नही आया।

डॉक्टर बुलवाया गया।

डॉक्टर आकर, उसकी हालत देखकर विस्मित हो गये। बोले—'यह तो एकदम थकावट की चरम सीमा पर आ पहुँचा है। किस तरह से ऐसा होना सम्भव हुआ ?'

मैं बोला—'आज किसी कारणवश सारे दिन उसे परिश्रम करना पडा है।'

व बोले—'यह तो एक दिन का काम नही रहा है। लगता है, दीघकाल से इसे क्षय चल रहा है, किसी ने ध्यान नही दिया।'

उत्तेजक औषधि और पथ्य देकर, डॉक्टर उसे चैतन्य करके चले गये। बाले—'बडे यत्न से यदि दैवात वच जाए, तो ही बचेगा, परन्तु इसके शरीर म प्राणशक्ति समाप्त हो चुकी है। लगता है, पिछले कुछ दिना म यह लडका केवल मनोबल के जोर स ही चलता-फिरता रहा है।

मैं अपना रोग भूल गया। सुबोध को अपने बिछौने पर सुलाकर दिन-रात उसकी सेवा करने लगा। डाक्टरा को फीस देन योग्य रुपये मेरे पास नही थे। स्त्री के गहना का बक्स खाला। उस पन्ने की माला को उठाकर स्त्री को देते हुए कहा—'इसे तुम रखो।' बाकी सबको गिरवी रखकर रुपये ले आया।

परन्तु रुपया से तो मनुष्य बचता नही। उसके प्राणो को तो मैंन स्वय प्रतिदिन जकडकर, मसलकर समाप्त कर दिया था। जिस स्नेह के भोजन से उसे दिन प्रतिदिन वचित कर रखा था, आज जब उसे हृदय भरकर लाकर दिया, तो वह उसे ग्रहण नही कर सका। खाली हाथ वह अपनी मा के पास लौट गया।

हेमन्ती

कन्या के पिता सब्र करते थे परन्तु वर के पिता ने सब्र नही करना चाहा। उन्होंने देखा कि लडकी की विवाह की उम्र पार हो चुकी है, परन्तु और कुछ दिन बीतने पर, उसे अच्छे या बुरे—किसी भी उपाय स दबाये रखने का समय भी निकल जाएगा। लडकी की उम्र अवध प्रकार से बढ़ अवश्य गई थी, परन्तु दहज के रुपयो का आपेक्षिक गुरुत्व भी इस समय उसकी अपेक्षा कुछ ऊपर ही था, इसीलिए पीछा किया जा रहा था।

मैं था वर। फिर भी विवाह के बारे म मेरे मत को जानना अनावश्यक था। अपना काम मैंने कर लिया था। एफ० ए० पास करके मैंने छात्रवृत्ति पाई थी। इसीलिए प्रजापति के दोना पक्ष—कन्या पक्ष और वर पक्ष, रह रहकर विचलित हो उठे।

हमारे देश म जो मनुष्य एक बार विवाह कर चुका है विवाह के बारे मे उसके मन मे फिर कोई पर शानी नही रहती। नर मास का स्वाद पाकर, मनुष्य के बारे मे बाघ की जो मनोदशा होती है स्त्री के बारे म उसके भाव वसे ही हो उठत है। अवस्था कसी भी और आयु भी कितनी ही हो—स्त्री का अभाव होते ही, उसकी पूर्ति कर लेने म उसे कोई द्विधा नही रहती। जितनी द्विधा और दुश्चिन्ता होती है, वह हम नये छात्रा को ही रहती है। विवाह के पौन पुनिक (बारम्बार) प्रस्ताव पर उनके पितृ पक्ष के सफेद बाल,

खिजाब के आशीर्वाद से पुन-पुन काले हो उठते हैं, और पहले रिश्ते की आँच से ही इन लोगो के काले बाल—विचार करते ही एक रात मे सफेद हो जाने का उपक्रम कर बैठते हैं।

सच कहता हूँ, मेरे मन म ऐसा विषय—उद्वेग जमा हो नही। बल्कि विवाह की बात से, मेरे मन के भीतर जैसे दक्षिणी हवा बहने लगी। कौतूहली कल्पना के किसलयो मे जैसे एक कानाफूसी होन लगी। जिसे वाक के फ्रेंच रिवोल्शन के नोटस की पाँच सात कापियाँ कण्ठस्थ करनी पडें, उसके लिए यह भाव, दोष ही है। मेरी इस रचना के बारे म यदि टक्स्ट-बुक कमेटी की अनुमति लेने की कोई आशका रहती, तो मैं सावधान हो जाता।

परन्तु यह क्या कर रहा हूँ? यह क्या कोई कहानी है जो उपन्यास म लिखने बैठ गया। ऐसे स्वर म मेरी रचना शुरू होगी, इसे क्या मैं जानता था? मन मे था कि कई वर्षों की वेदना के जो मेघ काले होकर घिर आये हैं, उन्ह वैशाख सन्ध्या की मूसलाधार वर्षा की भाति—प्रबल वपण से समाप्त कर डालूगा। परन्तु नही लिख सका बगला भाषा मे शिशु की पाठ्य पुस्तक, कारण, सस्कृत मुग्धबोध-व्याकरण मेरा पढा हुआ नही है—और न कर पाया काव्य-रचना, कारण, मातृभाषा मेरे जीवन मे ऐसी पुष्पित नही हो उठी है, जिससे स्वय के हृदय को बाहर खीचकर ला सकू। इसीलिए देख रहा हूँ कि मेरे भीतर का श्मशानचारी सन्यासी—अट्टहास्य से अपना ही परिहास करने बैठा है। बिना किए करेगा क्या? उसके आँसू जो सूख गए हैं। प्रखर धूप ही तो जेठ मास का अश्रु शून्य रुदन है!

मेरे साथ जिसका विवाह हुआ था, उसका सच्चा नाम नहीं दूगा। कारण, पृथ्वी के इतिहास म उसके नाम के बारे मे पुरातत्वशास्त्रियों मे विवाद होने की कोई आशका नही है। जिस ताम्रपत्र पर उसका नाम खुदा हुआ है वह मेरा हृदय-पट है! किसी भी समय म वह पट अथवा वह नाम विलुप्त हो जाएगा, ऐसी बात मैं सोच भी नही पाता हूँ। परन्तु जिस अमृत-लोक म वह अक्षय बना रहेगा उस जगह एतिहासिक का आवागमन नही है।

मेरी इस रचना म उसका—जैसा भी हो, एक नाम चाहिए! अच्छा, उस का नाम रख दिया शिशिर! क्योकि शिशिर मे रुदन हसी एकदम एक हो जाते हैं, और शिशिर मे सुबह की बात सन्ध्या-काल म आकर समाप्त हो जाती है।

शिशिर मुझसे केवल दो वप छोटी थी। अथच, मेरे पिता कयादान के पक्ष पाती नही थे, ऐसी बात नही थी। उनके पिता (मेरे बाबा) थे उग्रसमाज विद्राही, देश के प्रचलित धम कम मे उनकी तनिक भी आम्था नही थी, उहान कसकर अग्रेजी पढी थी। मेरे पिता उग्रभाव से समाज के अनुगामी थे, समाज को मानन मे उह बाधा देने वाली वस्तु हमारे समाज म, सदर मे अथवा अदर महल मे, डयोढी अथवा खिडकी की राह म—कही भी ढूढ पाना मुश्किल था। कारण, इहाने भी कसकर अँग्रेजी पढी थी। पितामह एव पिता—दाना ही मतामत के विद्रोह की दो विभिन मूर्तियाँ थी। कोई भी सरल स्वाभाविक नही था। फिर भी वडी आयु की लडकी क साथ पिताजी ने जो मेरा विवाह किया, उसका कारण यह था कि लडकी की आयु अधिक होने के कारण ही दहेज का अक भी बडा था। शिशिर मेरे श्वसुर की एकमात्र लडकी थी। पिता का विश्वास था कि कया के पिता के सब रुपए—भावी जामाता के भविष्य को पूण सफल करने मे लगे हैं।

मेरे श्वसुर के विचारा म किसी एक विशेष मत की बला नही थी। वे पश्चिम के किसी पहाडी राजा के आधीन वडी नौकरी करते थे। शिशिर जब गोद म थी, तभी उसकी माँ की मृत्यु हो गई थी। लडकी एक एक वर्ष करके वडी हो रही है, यह बात मेरे श्वसुर की आँख मे ही नही पडी। वहाँ उनके समाज का आदमी ऐसा कोई भी नही था जो उनकी आख म उँगली लगाकर दिखा देता।

शिशिर की आयु यथासमय सोलह वप की हुई, परतु वह स्वभाव से सोलह की थी समान म सोलह की नही थी। कोई उसे अपनी उम्र के बारे मे सतक होने का परामश नही देता था, और वह भी अपनी उम्र की ओर मुड कर नहीं देखती थी।

कालेज के ततीय वप मे पाँव रखा था—मेरी उम्र उत्रीस वप की थी, इसी समय मे मेरा विवाह हुआ। मेरी उम्र समाज के मत अथवा सामाजिक-सस्कार के मत से उपयुक्त थी या नहीं—इसे लेकर चाहे कोई लडाइ करके खूनखराबी करके मर जाए—परतु मैं कहता हूँ, वह आयु परीक्षा पास करन के लिए कितनी भी अच्छी हा, विवाह सम्बध के मामले म तनिक भी कम अच्छी नहीं थी।

विवाह का अरुणोदय हुआ एक फोटोग्राफ के आभास से। मैं अपना पाठ कण्ठस्थ कर रहा था। एक मजाक के रिश्तेवाली आत्मीया मेरी टेवल पर शिशिर

की तस्वीर रखती हुई बोली— अब जरा सच्ची पटाई पढो—एकदम गदन को घुमा फिरा कर !'

किसी एक अनाडी कारीगर की खीची हुई तस्वीर थी। माँ थी नहीं, लिहाजा किसी न उसके केश खीच कर बाधने हुए, जरी की साडी के साथ साहा अथवा मल्लिक कम्पनी का बेडौल ब्लाउज पहना कर, वरपक्ष की आखो को भुलावे म डालने के लिए जालसाजी का प्रयत्न नही किया था। एक बिल्कुल सीधा सादा मुह, सीधी-सादी दो आखें एव सीधी सादी एक साडी। परन्तु कुल मिलाकर क्या महिमा थी, उसे मैं कह नही सकूगा। जैसे-तैसे एक चौकी पर बैठी, पीछे डोरे से कढा हुआ शतरजी पर्दा, बगल मे एक तिपाई के ऊपर फूलदानी में फूलो का गुच्छा। और गलीचे के ऊपर साडी की तिरछी किनारी के नीचे दो नगे पाँव।

पर्दे की तस्वीर पर मेरे मन की स्वण शलाका लगते ही, वह मेरे जीवन के भीतर जग उठी। वे दाना काली आँखें—मेरी सम्पूण भावनाआ के भीतर एकटक देखती ही रही। और वह तिरछी किनारी के नीचे निकले दोना नगे पाव, मेरे हृदय पर अपना पद्मासन जमा बैठे।

पचाग के पन्ने उलटे जा रहे थे, दो-तीन विवाह के लग्न पीछे छूटे जा रहे थे, श्वसुर को तब छुट्टी नही मिल सकती थी। सामने एक अशुभ मुहूत, चार-पाँच महीना म ही मेरी क्वारी आयु की सीमा को उन्नीसवें वप म से निरथक ही बीसवें वप की ओर ठेल देने का षड्यन्त्र कर रहा था। मुझे श्वसुर के और उनके मालिक पर गुस्सा आने लगा।

जो भी हो, अशुभ लग्न से ठीक पहले के लग्न मे आकर विवाह का दिन निश्चित हुआ। उस दिन की शहनाई की प्रत्येक तान मुझे याद आ रही है। उस दिन के प्रत्येक मुहूत को मैंने अपने सम्पूर्ण चैतन्य के द्वारा स्पश किया था। मेरी वह उन्नीस वप की उमर मेरे जीवन में अक्षय होकर रहे।

विवाह मण्डप मे चारा ओर जमघट था, उसी के बीच कन्या के कोमल हाथ मेरे हाथ के ऊपर रखे गये। ऐसा आश्चय और क्या हो सकता है! मेरा मन बारम्बार कहने लगा—'मैंने पा लिया, मैंने इसे पा लिया!'

किसे पा लिया? यह जो दुलभ है—यह जो मानवी है—इसके रहस्य का क्या अन्त है?।

मेरे श्वसुर का नाम गौरीशकर था। वे हिमालय पर रहते थे, वह हिमालय ही जैसे उनका मित्र था। उनके गाम्भीय के शिखर देश पर एक शुभ्र हाम्य स्थिर हो गया था। और उनके हृदय मे स्नेह का जो झरना था उसकी खबर जो लोग जानते थे—व लोग तो उनह छोडना ही नहीं चाहते थे।

कम क्षत्र मे (नौकरी पर) लौटने से पूव मेरे श्वसुर न मुझे बुलाकर कहा—'बेटा, अपनी लडकी को मैं सत्रह वर्षों स जानता आ रहा हूँ, और तुम्ह इन कुछ दिनो से ही जाना ह। फिर भी तुम्हारे हाथो म ही बेटी सौप दी है। जो धन दिया है उसका मूल्य समझ सको—इससे अधिक आशीर्वाद और नही हो सकता है।'

उनके सम्बन्धी रिश्तेदार सभी ने उन्ह बारम्बार आश्वासन दते हुए कहा—'समधी जी मन म किसी तरह की चिन्ता मत करो। तुम्हारी लडकी जिस तरह पिता को छोडकर आई है, उसी तरह यहा पिता और माँ दोना को ही पा लिया है।

उसके बाद श्वसुर महाशय लडकी से विदा लेते समय हँसे—बोले—'बिटिया, जा रहा हूँ। तरा एकमात्र यह पिता ही रह गया है आज स इसका यदि कुछ खो जाए या चोरी चला जाए अथवा नष्ट हो जाए, तो मैं उसका उत्तरदायी हूँ।'

पुत्री बोली—'यही सही, कही भी जरा सा यदि नुकसान होगा, ता तुम्ह उसकी क्षतिपूर्ति करनी होगी।

अन्त म प्रतिदिन उसस जिन विषयो म गडबड हो जाती थी—पिताजी को उनके सम्बन्ध म उ हाने बार बार सतक कर दिया। आहार क बारे म मेरे श्वसुर यथेष्ट सयम नही रख पात थे—कई एक वस्तुएँ जो अपथ्य थी, उनके प्रति उनकी विशेष आसक्ति रहती थी—पिता को उन सब प्रलोभनो स यथा सम्भव बचाए रखना—पुत्री का एक दैनिक काम था इसीलिए आज पिता का हाथ पकडकर उद्वेग के साथ वह बोली—पिताजी, तुम मेरी बात याद रखना—रखोगे?'

पिता न हँसकर कहा—'मनुष्य प्रण करके तोड देता है—साँस लेन के लिए, अतएव वचन न देना ही सबसे अधिक निरापद है।

पिता के चले जाने पर कमरे का दरवाजा बन्द हो गया। उसके बाद

क्या हुआ, कोई नही जानता।

पिता और पुत्री के अश्रुहीन विदाई-व्यापार को, बगल के कमरे म से कौतूहली अत पुरिकाओ के एक दल ने देखा और सुना। अवाक कर देन वाला काण्ड था। ये लोग उजड्डो के देश मे रहकर उजड्ड हो गए हैं। माया ममता एकदम ही नही है।

मेरे श्वसुर के मित्र वनमाली बाबू ने हमारे विवाह का सम्बन्ध सम्पन्न कराया था। वे हमारे परिवार के भी परिचित थे। उन्होने मेरे श्वसुर से कहा था—'ससार, तुम्हारी तो यही एक लडकी है। अब इसी के बगल में मकान लेकर यही दिन काट दो।

वे बोले—'जिसे दे दिया है उसे उजाड कर ही दिया है। अब लौटकर देखने से दु ख पाना होगा। अधिकार छोड देने के बाद अधिकार बनाए रखने जैसी विडम्बना और दूसरी नही है।'

सबसे अत मे मुझे एकात मे ले जाकर—अपराधी की भाति सकोच पूवक बोले—मेरी लडकी को पुस्तकें पढने का शौक है और लोगो को भोजन कराना भी उसे बहुत अच्छा लगता है। इसीलिए समधी जी को नाराज करने की इच्छा नही होती। मैं बीच बीच म तुम्हे रुपए भेजूगा। तुम्हारे पिता को यदि पता चल जाए तो क्या वे नाराज होगे ?'

प्रश्न सुनकर कुछ आश्चय हुआ। ससार म किसी भी ओर से अथसमागम होन पर पिताजी नाराज होगे—उनका दिमाग ऐसा खराब तो देखा नही है।

जैसे घूस दे रहे हो इस भाव से मेरे हाथ पर एक सौ रुपये का नोट रखते हुए मेरे श्वसुर शीघ्रता से प्रस्थान कर गए, मेरा प्रणाम लेने के लिए भी सब्र नही किया। पीछे से देखा—अब जाकर जेब म से रूमाल बाहर निकाला।

मैं स्तब्ध होकर बैठा बैठा सोचने लगा। मन म समझा—ये लोग अन्य जाति के मनुष्य हैं।

मित्रो मे से अनेक को विवाह करते देखा है। मन्त्र पढे जाने के साथ साथ ही स्त्री को एकदम एक ही ग्रास म गले से नीचे उतार जाते हैं। पाकयन्त्र (पेट) म पहुँच कर, कुछ क्षण बाद ही इस पदाथ के अनेक गुण अवगुण प्रकट हो जाते हैं, एव क्षण-क्षण पर भीतरी उद्वेग भी प्रकट होता रहता है, परन्तु माग मे कही भी कोई बाधा नही पडती। मैंने विवाह मण्डप म ही समझ लिया था कि

म'या दान के म'त्रा से स्त्री को जितना पाया जाता है उससे गृहस्थी चलती है, पर'तु प'द्रह आना प्राप्त करना बाकी रह जाता है। मुझे स'देह होता है कि अधिकाश लोग स्त्री से विवाहमात्र करत हैं, उसे पाते नहीं हैं, एव जानकर भी नहीं प्राप्त कर पात मजे की बात यह कि उन लागों की स्त्रिया को भी मृत्यु पय'त इसका पता नहीं चल पाता !! परन्तु वह तो मेरी साधना का धन थी, वह मेरी सम्पत्ति नहीं थी वह मेरी सम्पद् थी !!!

शिशिर—नहीं, इस नाम का व्यवहार अब नहीं चलेगा। प्रथम ता यह उसका नाम नहीं है इसलिए यह उसका परिचय भी नहीं है। वह सूय की भाँति ध्रुव है, वह क्षणजीवी उपा के विदाकाल की अश्रु बूद नहीं है। क्या होगा छिपाये रखकर। उसका असल नाम हेम'ती है।

मैंन त्खा, इस सत्रह वय की लडकी क ऊपर यौवन का सम्पूण प्रकाश आ पडा है परन्तु अभी तक वह किशोरावस्था स जगकर नहीं उठी है। ठीक जैस शैल शिखर की बफ के ऊपर सुबह का प्रकाश बिखर पडा हो, परन्तु बफ अभी तक गली न हो। मैं जानता हूँ, वैसी अकलक शुभ्र है वह, कैसी भोली और पवित्र है!

मेरे मन म एक चिन्ता थी कि पढी लिखी वडे घर की लडकी है, क्या पता किस तरह स उसके मन को प्राप्त करना पडेगा। पर'तु बहुत थाडे दिना म ही मैंने देख लिया, कि मन की सडक के साथ—पुस्तका की दूकान की सडक का किसी भी जगह कोई लेवल क्रासिग नहीं है। कब उसके धवल मन के ऊपर एक रग चढ गया, आँखा म एक नीद जग गई, कब उसका सम्पूण शरीर मन जसे उत्सुक हो उठा उसे ठीक ठीक कह नहीं सकता।

यह तो हुई एक ओर की बात। अब दूसरी ओर की भी है उसे विस्तार-पूवक कहन का समय आ गया है।

राज परिवार मे मेरे श्वसुर की नौकरी थी। बक म उनके कितने रुपय जमा है, इस सम्ब'ध मे जनश्रुति ने अनेक प्रकार के अक्पात किये थे, पर'तु काई भी अक लाख के नीचे नहीं झुकता था। इसका फल यही हुआ था कि उसके पिता की कीमत जसे जसे बढी, हेम का सम्मान भी उतना ही बढता रहा था। हमारे घर के काम काज की रीति पद्धति सीख लेने के लिए वह व्यग्र थी, पर'तु माँ न उसे अत्य'त स्नेह से किसी मे भी हाथ नहीं लगाने दिया। यही क्या, हेम

के साथ ही पहाड से जो दामी आई थी, यद्यपि उसे वे अपने कमरे में नही घुसने देती थी, फिर भी उसकी जाति के बारे मे उन्होने प्रश्न तक नही किया कि पीछे कही अरुचिकर उत्तर न सुनना पडे ।

इसी तरह दिन बीते जा सकते थे, परन्तु अकारण एक दिन पिताजी ने मुह पर घोर अँधेरा दिखाई पडा। मामला यह था—मेरे विवाह में मेरे श्वसुर ने पन्द्रह हजार रुपये नकद एव पाँच हजार रुपये के गहने दिये थे । पिताजी को अपने एक दलाल मित्र से खबर मिली कि दसम हजार रुपये उन्होने उधार लेकर इकट्ठे किए हैं, उसका व्याज भी मामूली नहीं है। लाखो रुपये की अफवाह तो एकदम धोखा थी ।

यद्यपि मेरे श्वसुर की सम्पत्ति की मात्रा के बारे में, मेरे पिता के साथ उनकी किसी भी दिन कोई बात नही हुई थी, फिर भी पिताजी ने न जाने किस युक्ति से निश्चित कर लिया कि उनके समधी ने उनके साथ जान बूझकर धोखा किया है ।

उसके बाद, पिताजी की एक धारणा थी कि मेरे श्वसुर राजा के प्रधान मन्त्रिमण्डल के कुछ एक है । पता लगाकर जाना कि वे उस जगह के शिक्षा-विभाग के अध्यक्ष हैं । पिताजी बोले, अर्थात् स्कूल के हैडमास्टर ?—ससार मे अच्छे पद जितने भी हैं उनमे सबसे ऊँचे ! पिताजी को बडी आशा थी कि श्वसुरजी आज के बाद या कल काम से अवकाश लेंगे ही—उस समय मैं ही राजमन्त्री बनूगा ।

इसी समय रास के उपलक्ष मे गाँव के कुटुम्बीजन हमारे कलकत्ते के मकान मे आकर जमा हुए। कन्या को देखकर उनके बीच एक कानाफूसी होने लगी । कानाफूसी क्रमश अस्फुट होकर स्फुट हो उठी । दूर के सम्पर्क की कोई एक नानी बोल उठी—'मेरे भाग्य फूट गये ! नातबहू ने तो उम्र मे मुझे भी मात कर दिया !!'

एक और नानी की ही श्रेणी वाली महिला बोली—'हमी लोगो को यदि हार न मनवाता, तो अपू बाहर से बहू लाने क्या जाता ?!'

मेरी माँ बडे जोर से कह उठी—'अरी माँ, यह कैसी बात ! बहू की उम्र तो अभी ग्यारह की भी नही हुई, इस आने वाले फाल्गुन मे बारहवी मे पाँव रखेगी ! उजड्डो के देश मे दाल रोटी खाकर बडी हुई है, इसीलिए ऐसी बडी

लग रही है।

नानियो ने कहा—'बेटी, अभी तक आखा से इतना कम तो नही दीखता हमे ! कन्या-पक्ष न अवश्य ही तुम लोगो से उम्र छिपाई है !'

मा बोली—'हम लोगो ने जन्मपत्री जा देखी थी !'

बात सच थी। परन्तु जन्मपत्र म प्रमाण है कि लडकी की आयु सत्रह वष की है।

प्रवीणाएँ बोली—'जन्मपत्र म क्या धोखा नही चलता है ?'

इसी को लेकर घोर तक छिड गया यही क्या, अच्छा खासा विवाद हो गया।

इसी समय वहा हेम आ उपस्थित हुई। किसी एक नानी ने जिज्ञासा की—'नातबहू, तुम्हारी उम्र कितनी है, बताओ तो ?!'

माँ ने उसे आख दबाकर इशारा किया। हेम उसका अथ नही समझी, बोली—'सत्रह !'

माँ झेंप कर बोल उठी—'तुम नही जानती !'

हेम न कहा—मै जानती हूँ मेरी उम्र सत्रह वष की है।'

नानिया परस्पर शरीर को काचन लगी।

बहू की निर्बुद्धिता पर नाराज होकर माँ बोली—'तुम तो सब जानती हो। तुम्हारे पिता न जो कहा था कि तुम्हारी उम्र ग्यारह है ?!

हेम ने चौकते हुए कहा—पिताजी ने कहा था ? कभी नही !

मा ने कहा—'अवाक कर दिया ! समधी ने मरे सामने अपन मुह स कहा था और लडकी कहती है—'कभी नही ! यह कह कर फिर एक बार आँख दबाइ।

इस बार हेम इशारे का मतलब समझी, मगर स्वर का और भी दढ़ बना कर बोली—पिताजी एसी बात कभी भी नही कह सकते !

इसके बाद नानिया जितनी गालियाँ देन लगी, बात की कालिख उतनी ही गाढ़ी होती हुई चारो ओर लिपट गई।

माँ न नाराज होकर पिता के सामन उनकी बहू की मूखता एव उसस भी अधिक जिद करन की बात कह दी। पिताजी न हेम को बुलाकर कहा, क्वारी लडकी की उम्र सत्रह वर्ष हो यह क्या कोई बडे गौरव की बात है, जिसे ढोल

बजाकर कहते रहना होगा ? हमारे यहा यह सब नही चलेगा, कहे रखना हू !'

हाय र, अपनी पुत्रवधू के प्रति पिताजी का वह मधुमिश्रित स्वर आज एक दम ही कडा होकर गड्ढे म किस तरह उतर आया ।

हेम ने व्यथित होकर प्रश्न किया—'कोई यदि मेरी उम्र पूछे तो क्या कहूँ ?'

पिताजी बोले—'झूठ बोलने की आवश्यकता नही है, तुम कह देना—मैं नही जानती—मेरी सास जानती हैं !'

किस तरह झूठ नही बालना पडेगा—उस उपदेश को सुनकर हेम इस तरह से चुप रह गई कि पिताजी ने समझा—उनका सदुपदेश एकदम व्यथ चला गया है ।

हम की दुर्गति से दु ख कसे कहूँ, उसके सामने मेरा सिर झुक गया । उस दिन देखा, शरत्-प्रभात क आकाश की भाति उसकी आखो की वह उदार दृष्टि किसी स देह से म्लान हो गई है । भीत हारिणी की भाति उसन मेरे मुह की ओर देखा । सोचा होगा—'मैं इन लोगो को पहचान नहीं पा रही हूँ !'

उस दिन एक सु दर जिल्द बँधी, अँग्रेजी कविता की पुस्तक उसके लिए खरीद लाया । पुस्तक को उसन हाथ मे ले लिया एव धीरे से आले के ऊपर रख दिया, एक बार खोलकर भी नही देखा ।

मैं उसके दोनो हाथो को पकडकर बोला—हम मेर ऊपर नाराज मत होना । मैं तुम्हारे सत्य म कभी आघात नही पहुँचाऊँगा, मैं तो तुम्हारे सत्य के ब धन म बँधा हुआ हूँ !'

हेम कुछ न कहकर जरा सा हँस गई । यह मुस्कर हँसी विधाता न जिसे दी है उसे कोई बात कहन की आवश्यकता नही है ।

पिताजी की आर्थिक उन्नति के बाद से—देवताओ के अनुग्रह को स्थायी करन क लिए नये उत्साह क साथ हमारे घर पूजा अचना चलती थी । अब तक उन सब क्रिया-कर्मों म घर की बहू को नहा पुकारा गया था । नव वधू को एक दिन पूजा की सामग्री सजान का आदेश हुआ, वह बोली,—'माँ, बता दीजिए कि क्या करना होगा ?'

इसमे किसी के सिर पर आकाश टूटकर गिर पडन की बात नहीं थी, कारण सभी को मालूम था कि मातहीन प्रवास में कन्या बडी हुई है । परन्तु, मयम

हेम को लज्जित करना ही इस आक्षेप का हेतु था। सभी गाल पर हाथ रखकर बोले —'अरी माँ, यह क्या काण्ड है। यह किस नास्तिक के घर की लडकी है? अब तो घर स लक्ष्मी चली ही जाएँगी और देर नही है।'

इसी उपलक्ष्य म, हेम क पिता के प्रति जो नही कहा जाना चाहिए, वह सब कहा गया। जब स कडवी बाता की हवा चलन लगी थी, हेम न एकदम चुप रहकर सबको सहन किया था। कभी किसी के सामने उसन आँखो से पानी नहीं बहाया था। वह उठकर खडी होती हुई बोली— आप लोग जानती हैं कि उस देश म मेरे पिता को ऋषि कहा जाता है?

ऋषि कहा जाता है?! एक जोरदार हँसी फैल गई। इसके बाद से उसके पिता का उल्लेख करते समय कहा जाता—'तुम्हारे ऋषि पिता' —इस लडकी की सबसे अधिक दद की जगह कहाँ है, उसे हमारे परिवार न जान लिया था।

वस्तुत, मेरे श्वसुर ब्राह्म भी नही थे, क्रिस्टान (ईसाई) भी नही थे, शायद नास्तिक भी नहीं हागे! दवाचन की बात पर किसी दिन उन्होंने विचार भी नही किया था। लडकी को उन्हाने बहुत पढाया लिखाया था, परन्तु किसी दिन भी देवता के बारे म उस कोई उपदेश नहीं दिया था। वनमाली बाबू से इस विषय मे उनसे एक बार प्रश्न किया था। उन्होन कहा था— मैं जिसे नही समझता, उसकी सीख देना तो केवल कपट सिखाना ही होगा।'

अन्त पुर म हेम की एक स्वाभाविक भक्त थी, वह थी मेरी छोटी बहिन नारानी। भाभी को प्यार करने के कारण उसे बहुत डाट सहनी पडी थी। परिवार-यात्रा म हेम के सभी अपमाना की खबर मैं उसी के द्वारा सुन पाता था। एक दिन के लिए भी हेम के द्वारा कुछ नही सुना। इन सब बाता को सकोच के कारण वह मुँह पर ही नही ला पाती थी। वह सकोच स्वय के लिए नही था।

हेम अपने पिता से जितनी चिटिठ्याँ प्राप्त करती उन सबको मुझे पढने के लिए दती थी। चिटिटयाँ छोटी परन्तु रस भरी होती थी। वह भी पिना को चिट्ठिया लिखती, उन सबको भी मुझे दिखा देती थी। पिता के साथ अपने सम्बन्ध का मेरे सङ्ग भाग किय बिना उसका दाम्पत्य जसे पूण नही हो पाता था। उसकी चिटठी मे ससुराल के बार म शिकायत का इशारा तक नही रहता था। रहने पर मुसीबत आ सकती थी। नारानी से सुना था —वह ससुराल की क्या

बात लिखती है, इसे जानने के लिए बीच बीच मे उसकी चिट्ठियो को खोल लिया जाता था।

चिट्ठियो मे अपराध का कोई प्रमाण न पाकर ऊपर वालो का मन शान्त हो गया था, ऐसी बात नही थी! बहुत निराश होकर व सब कहने लगे—'इतनी जल्दी जल्दी चिट्ठियाँ क्या डाली जाती हैं? पिता ही जसे सब-कुछ है, हम लोग क्या कुछ भी नही है?!' इसी को लेकर अनेक अप्रिय बातें चलन लगी। मैंने क्षुब्ध होकर हेम से कहा, कि अपने पिता की चिट्ठी और किसी को न देकर, मुझे द दिया करो। कॉलिज जाते समय मैं पोस्ट कर दिया करूँगा!'

हेम न विस्मित होकर जिज्ञासा की—'क्यो?'

मैंने लज्जित होकर उसका उत्तर नही दिया।

घर म अब सभी ने कहना आरम्भ कर दिया—अपू का दिमाग खराब हो गया है! बी० ए० की डिग्री छीके पर ही लटकी रह गई है! लडके का दोष ही क्या है?!

वह तो था ही। दोष सब हेम का था! उसका दोष यह था कि उसकी उम्र सनह वष थी, उसका दोष यह था कि मैं उसे प्यार करता था, उसका दोष यह था कि विधाता की यही इच्छा थी, इसीलिए मेरे हृदय के रन्ध्र रन्ध्र म सम्पूर्ण आकाश अब बासुरी बजा रहा था।

बी० ए० की डिग्री को मैं चूल्हे मे डाल सकता था परन्तु हम के कल्याण के लिए प्रतिज्ञा की—पास करूँगा और अच्छी तरह पास करूँगा! इस प्रतिज्ञा की रक्षा करना, मुझे उस अवस्था म भी जो सम्भव हो सका, उसके दो कारण थे—एक तो हेम के प्यार के भीतर एक ऐसे आकाश का विस्तार था, जो सकीण आसक्ति के भीतर मन को घेरे नही रखता था, उस प्यार के चारो ओर एक बेहद स्वास्थ्यकर हवा बहती थी। दूसरे, परीक्षा के लिए जिन पुस्तको का पढने की आवश्यकता थी, उन्ह हेम के साथ मिलकर पढना असम्भव नही था।

परीक्षा पास करने के प्रयत्न म कमर बाँध कर मैं लग गया। एक दिन रविवार को दोपहर म बाहर वाले कमरे मे बठा हुआ मार्टिनो के चरित्र तत्व सम्बन्धी पुस्तको की विशेष विशेष पक्तियो का बीच-बीच म से चुनकर नीली पेंसिल से लकीरें खीच रहा था, इसी समय बाहर की ओर अचानक ही मरी आँख उठ गई।

मरे कमरे के सामने वाले आँगन से उत्तर की ओर अन्तपुर मे जाने को एक जीना (सीढिया) था। देखा—उसी की एक खिडकी पर हम चुपचाप बैठी हुई पश्चिम की ओर दख रही है। उस ओर मालिको के बगीचे म कन्चन-गाछ गुलाबी फूला स आच्छादित थे।

मेरी छाती म धक से एक धक्का लगा, मन के भीतर एक लापरवाही का आवरण छिन्न भिन्न होकर गिर पडा। इस नि शब्द गम्भीर वेदना का रूप मैं इतन दिनो तक स्पष्ट नही देख सका था।

कुछ नही, मैं केवल उसकी वठने की भङ्गिमा ही देख पा रहा था। उसकी गोद म एक हाथ के ऊपर दूसरा हाथ स्थिर रखा हुआ था, सिर दीवार के सहारे टिका था, खुले हुए केश बायें कन्धे पर होते हुए छाती पर झूल रह थे। मेरा हृदय हाहाकार कर उठा।

मेरा निजी जीवन इस तरह लबालब भर गया था कि मैं कही भी किसी शून्यता को लक्ष्य नही कर पाता था। आज अचानक अपन अत्यन्त निकट एक वैराग्य का गह्वर दखा। किस तरह स मैं उसे भर सकूगा?

मुझे तो कुछ भी नही छोडना पडा। न आत्मीय, न अभ्यास, न कुछ! हम उन सबको छोडकर मर पास आई है। वे सब कितनी चीजें हैं, उसे मैंने अच्छी तरह सोचा भी नही। हमारे घर मे अपमान की कण्टक शया पर वह बैठी थी, उस शैया म मैंने भी उसके साथ हिस्सा कर लिया था। उस दु ख म हेम के साथ मेरा सहयोग था, उसम हम लोगो को अलग नही होना पडा था। परन्तु यह गिरिनन्दिनी—सनह वष तक भीतर बाहर से कितन मुक्त वातावरण म पलकर बडी हुई है। किस निमल सत्य मे और उदार आलोक म उसकी प्रकृति ऐसी आकपक, शुभ्र एव सबल हो उठी है। उससे हेम कैस एकदम से और निष्ठुर रूप से अलग हो गइ है, इतने दिनो म उसे मैं पूण रूप से अनुभव नही कर पाया था क्योकि वहाँ उसक साथ मेरा बराबरी का आसन नही था।

हम मानो भीतर ही भीतर पल पल म मरी जा रही थी। उस मैं सब कुछ द सकता था परन्तु मुक्ति नही द सकता था—वह स्वय मेर पास भी कहा है? इसीलिए कलकत्त की गली मे इस छज्जे की फाक से, निर्वाक आकाश के साथ उसके निवाक मन की बातें होती थी, एव किसी किसी दिन रात म अचानक उठकर दखता था कि वह बिछौन पर नही है, हथेली पर सिर रखकर

आकाश म भर तारो की ओर मुह् करके छत पर सोई हुई है ।

माटितो पडा रहा । सोचने लगा—क्या करूँ ? बचपन से ही पिता के सामने मेरे सकोच का अन्त नही था, कभी उनके सामने शिकायत करने का साहस अथवा अभ्यास मुझे नही था । मगर उस दिन नही ठहर सका । लज्जा छोडकर उनसे कह बठा, कि बहू की तबीयत ठीक नही है, उसे एक बार पिता के पास भेज देना चाहिए ।

पिता तो एकदम हतबुद्धि हो गये । उनके मन मे लेशमात्र भी सन्देह नही रहा कि हेम ने ही इस तरह की अभूतपूर्व बेअदबी के लिए मुझे प्रेरित किया है । उसी समय उन्होंने उठकर अन्त पुर मे जाकर हेम से पूछा—'बहूरानी, तुम्हे क्या बीमारी है ?'

हेम बोली—'बीमारी तो कोई नही है ।'

पिताजी न सोचा—यह उत्तर तेजी दिखान के लिए है ।

परन्तु हेम का शरीर भी जो दिन दिन सूखा जा रहा था, उसे हम लोग प्रतिदिन के अभ्यासवश नहा समझ पाते थे । एक दिन वनमाली बाबू उसे देखते ही चौक उठे—'एँ, यह क्या ! हमी, यह तेरा कैसा चेहरा हो गया है ? बीमार तो नही है ?'

हेम न कहा—'नही !'

इस घटना क दस दिन बाद ही, बिना कह सुन अचानक मेरे श्वसुर आ उपस्थित हुए । हेम की बीमारी की बात निश्चय ही वनमाली बाबू ने उन्हे लिख दी थी ।

विवाह के बाद पिता से विदा लेत समय पुत्री न अपनी आँखो का पानी रोक लिया था । इस बार मिलन के दिन—पिता न जम ही ठोडी पकड कर मुँह ऊपर को उठाया, वैस ही हेम की आँखो के पानी ने बाध तोड दिया । पिता कोई बात ही नही कह सके, जिज्ञासा तक नहीं की—'कैसी है ? मेरे श्वसुर ने अपनी पुत्री के मुह पर ऐसा कुछ देखा था, जिससे उनकी छाती फट गई थी ।

हेम पिता का हाथ पकड कर, उन्हे अपने कमरे म ले गई । बहुत सी बातें पूछने को था । उसके पिता का स्वास्थ्य भी अच्छा नहीं दीख रहा था ।

पिताजी ने जिज्ञासा की—'बिटिया, मेरे साथ चलेगी ?'

हेम भिखारिन की तरह बोल उठी—'चलूगी !'

पिता बोले—'अच्छा, सब ठीक करता हूँ।'

श्वसुर यदि अत्यन्त उद्विग्न न रहे होते, तो इस घर मे घुसते ही समझ लेते कि इस जगह उनके अब वे दिन नही हैं। उनके अचानक आविर्भाव को उपद्रव मानकर—पिताजी न तो अच्छी तरह से बात ही नही की। मेरे श्वसुर को याद था, कि उनके समधी ने एक समय उन्हे बारम्बार यह आश्वासन दिया था कि जब उनकी खुशी हो, लडकी को व घर ले जा सकेंगे, यह मत्य अन्यथा हो सकेगा, यह बात व मन म भी नही ला सके थे।

पिताजी तम्बाकू खीचते-खीचते बोले—'समधी जी, मैं तो कुछ कह नहीं सकता, एक बार इसलिए घर के भीतर—'

'घर के भीतर' के ऊपर भार डालने का अर्थ क्या है यह मैं जानता था। समझ गया कि कुछ होगा नही। कुछ हुआ भी नही।

बहू रानी का स्वास्थ्य अच्छा नही है! इतना बडा अन्यायपूर्ण अपवाद ?!

श्वसुर महाशय ने स्वय एक अच्छे डाक्टर को लाकर परीक्षा कराई। डॉक्टर बोले—'वायु-परिवर्तन आवश्यक है, अन्यथा अचानक एक सख्त रोग हो सकता है।'

पिताजी ने हँसकर कहा—'अचानक एक सख्त रोग तो सभी को हो सकता है। यह कोई नई बात है ?!

मेरे श्वसुर ने कहा—'जानते तो हैं, कि व एक प्रसिद्ध डॉक्टर हैं उनकी बात क्या—'

पिताजी ने कहा—'ऐसे ढेरों डॉक्टर देखे हैं। दक्षिणा के बल पर, सभी पण्डितों से सब विधान मिल जाते हैं, एव सभी डाक्टरों से सब रोगों का सार्टिफिकेट भी प्राप्त कर लिया जाता है।'

इस बात को सुनकर मेरे श्वसुर एकदम स्तब्ध हो गये। हम समझ गये, कि उसके पिता का प्रस्ताव अपमान के साथ अस्वीकृत हुआ है। उनका मन एकदम काठ हो गया।

मैं और नही सह सका। पिताजी के पास जाकर बोला—'हम को मैं ले जाऊँगा!'

पिताजी गरज उठे—'अच्छा रे— इत्यादि इत्यादि।

मित्रो म से किसी किसी ने मुझसे पूछा कि जो कहा था, वह किया क्या

नही ? पत्नी को लेकर जबदस्ती बाहर चले जान से ही काम ठीक हो जाता। क्यो नहा गया ? क्या नहीं ! यदि लोकधम के सामन सत्यधम की उपेक्षा न कर पाता, यदि घर के मामन घर के मनुष्य की बलि न दे पाता, तो मेरे रक्त के भीतर जो परम्परागत शिक्षा है वह क्या करन के लिए है ! जानते हो तुम लोग ? जिस दिन अयोध्या के लागा न सीता का त्याग करन के लिए दावा किया था—उनके भीतर भी तो मैं था ! और उस त्याग के गौरव की कथा युग युगा से जो लाग गाते आ रहे हैं, मैं भी उनम स एक व्यक्ति हूँ। और मैंन ही तो उस दिन लोकरजन के लिए स्त्री परित्याग करन का गुण-वणन करते हुए मासिक पत्र म निबन्ध लिखा था। हृदय का रक्त दकर मुझे ही एक दिन दूसरी सीता विसजन की कहानी लिखनी हागी—इस बात को कौन जानता था।

एक बार फिर पिता और पुत्री की विदा का क्षण उपस्थित हुआ। इस बार भी दोना जनो के मुह पर हँसी थी। पुत्री हँसी हँसी मे ही भत्सना करती हुई बोली—'पिताजी, अब यदि कभी तुम मुझे देखन के लिए इस तरह दौडे दौडे इस घर म आओगे, तो मैं घर के दरवाजे बन्द कर लूगी !'

पिता न हँसी-हँसी म कहा—'फिर यदि आऊँगा, तो सेंध काटने के औजार साथ लेकर ही आऊँगा !'

इसके बाद हेम के मुख पर उसकी हमेशा की वह स्निग्ध हँसी फिर कभी दिखाई नहीं दी।

उसके बाद क्या हुआ, वह बात अब नहीं कह पाऊँगा।

सुना है, माँ पात्री (वधू) को ढूढ रही है। शायद किसी दिन माँ के अनुरोध को टाल न सकू—यह भी सम्भव हो सकता है। कारण रहने दो अब क्या जरूरत है !

बडी खबर

कुसुमी बोली—तुमने जो कहा था, कि इस जमाने की बडी-बडी सब खबरें तुम मुझे सुनाओगे अन्यथा मेरी शिक्षा कैसे होगी, दादा महाशय ?

दादा महाशय बोले—बडी खबरों की झोली लाद कर कौन घूमेगा, बताओ ? उसके भीतर बहुत कूडा करकट जो रहता है !

उसे निकाल दो न !

निकाल देने पर बहुत ही थोडा जो कुछ रह जाएगा, तब वह तुम्हें छोटी खबर मालूम देगी। परन्तु वास्तव में वही असली खबर होगी।

मुझे असली खबर ही दो !

तो देता हूँ। तुम्हें यदि बी० ए० पास करना पडता, तो सब कूडा-करकट अपनी टेबल पर ढेर बना कर रखना पडता, अनेक व्यर्थ की बातें अनेक झूठी बातें को मान कर चलना पडता—पुस्तकें लादे हुए।

कुसुमी बोली—अच्छा दादा महाशय, आजकल के जमाने की एक खूब बडी खबर को छोटी बनाकर सुनाओ—देखूँ तुममें कितनी क्षमता है ?

अच्छा सुनो।

शान्ति से काम चल रहा था।

महाजनी नाव पर पोस्तर झगडा चल रहा था—पाल और डाँड में। डाँडों का दल टक-टक करते हुए

माची के न्यायालय म उपस्थित हुआ, बोला—यह तो अब सहन नहीं होता ! यह जो तुम्हारा अहकारी पाल है, यह छाती फुलाकर कहता है कि हम सब छोटे आदमी हैं, क्योंकि हम सब दिन रात नौका के तख्ता म बधे हुए, पानी को ठेलते चलते हैं। और व चलत है मर्जी से—किसी के भी हाथ के धक्के की परवाह नही करत। इसीलिए व हुए वडे आदमी ! तुम तय करदो कि किसकी कद्र ज्यादा है। हम सब यदि छोटे आदमी हों, तो सब मिलकर काम से इस्तीफा दे देंगे—देखें, तुम नाव किस तरह चलाओगे !

माँझी न देखा कि मुसीबत है। कुछ डाँडो को ओट म ले जाकर धीरे से कहा—उसकी बातो पर ध्यान मत देना भाइया ! बिल्कुल हवाई भाषा म वह बातें करता रहता है। तुम सब जवान यदि मरते जीत हुए मेहनत न करो, तो नौका एकदम अचल हो जाएगी। और यह पाल खाली बाबूगीरी करता रहता है, ऊपरी मजिल पर। एक डलिया पर हवा डालते ही वह काम बन्द करके, पाँव पर पाँव रख कर पडा रहता है, नाव की चाल के ऊपर। उस समय उसका फड फडाना बन्द हो जाता है, आहट भी नही मिल पाती। परन्तु सुख-दु ख विपद् आपद, हाट घाट सभी मे तुम्ही लोगो पर मुझे भरासा रहता है। इस नवाबी के बोझ को जब तब तुम लोगो का बल लेकर ही चलना पडता है। कौन कहता है कि तुम लोग छोटे आदमी हो ?!

माँझी को भय हुआ कि ये बातें शायद पाल के कान मे जा पहुँची हैं। उसने आकर कान ही कान म कहा—पाल महाशय, तुम्हारे साथ किसकी तुलना होगी ! कौन कहता है कि तुम नाव चलाते हो, वह तो मजदूरा का काम है। तुम अपनी ही फुर्ती से चलते हो और तुम्हारे यार बख्शी आदि तुम्हारे इशारे पर पीछे पीछे चलते हैं। फिर झूल पडो, यदि कुछ साँस फूल उठी हो तो ! इन डाँडो के कमीन पन पर तुम ध्यान मत देना। भाई, उन्ह इस तरह कसकर बाध रखा है कि उनकी कितनी भी उछल कूद क्यो न हो, काम किये बिना नही चल सकता।

सुनकर पाल फूल उठा और बादलो की ओर देख देख कर जम्हाई लेने लगा। परतु लक्षण अच्छे नही थे। डाडा की हड्डियाँ मजबूत थी व इस समय टेढे पडे हुए थे, किसी दिन उठ खडे हों, धक्का मार दें, तो टुकडे-टुकडे हो जाएगा पाल का घमण्ड। मालम हो जाएगा कि डाड ही नाव को चलाते ह—आँधी हो, तूफान हो या ज्वार भाटा हो !

कुसुमी बोली—तुम्हारी बडी खबर इतनी सी ही है ? क्यो तुम मजाक कर रहे हो ?

दादा महाशय बोले—मजाक जैसा इस समय सुनाई दे रहा है। देखते देखते किसी दिन यह बडी खबर वडी हो उठेगी।

उस समय ?

उस समय तुम्हारे दादा महाशय इन डाडो क साथ ही ताल मिलाने का अभ्यास करने बैठेंगे।

और मैं ?

जिस जगह डांड बहुत अधिक कच् कच् करेंगे, तुम उस जगह योडा सा तेल लगाओगी।

दादा महाशय बाले—असली खबर छोटी होती है, जैसे वीज । डाल-पत्ते लेकर वडा वक्ष पीछे आता है। अव तो समझ गई ?

कुसुमी वोली—हा, समझ गई। मगर उसका मुह देखकर जान पडा कि वह समझी नही है। परन्तु कुसुमी म एक गुण है कि दादा महाशय के समक्ष वह सहज ही नही मानना चाहती कि वह कुछ नही समझी। अपनी इस मौसी की अपेक्षा वह बुद्धि म कुछ कम है—इस वात को दवाये रखना ही अच्छा है।

चण्डी

दीदी, तुम शायद उस मुहल्ले के चण्डी बाबू को जानती हो ?

जानूँगी नही ! वे तो प्रसिद्ध निन्दक (सभी की बुराई करने वाले) हैं।

विधाता के कारखाने म विशुद्ध वस्तु तैयार नही होती, मिलावट रहती ही है। दैवात ही कोई-कोई व्यक्ति विशुद्ध उतर जाता है। चण्डी उसी का श्रेष्ठ नमूना है। उसकी निन्दकता म कोई मिलावट नही है। जानते तो हो कि मैं आर्टिस्ट आदमी हूँ ! इसीलिए ऐसी विशुद्ध वस्तुएँ मेरे दरबार मे आ जुटती हैं। उस आदमी को एकदम जीनियस कहना ही पडता है। जरा भी दूर हटते ही—फिर ठिकाना नही मिल सकता। एक दिन देखा—वह अध्यापक अनिल के दरवाजे मे कान लगाकर कुछ सुन रहा है। चारो ओर आँख कान खुले रखने पडते हैं, किसी पर भी विश्वास करने का उपाय नही है—चोर-उचक्को से देश भर गया है।

कहते क्या हो ?!

सुनकर अवाक रह जाओगे, यही उस दिन इस तरह से मेरा चम्पई रङ्ग का अँगौछा—खिडकी के ऊपर से पता नही कब गायब हो गया।

कहते क्या हो, अँगौछा ?

अरे हाँ, अँगौछा ही ! कोने पर जरा-सा फट

गया था, उसकी सिलाई कर ली थी।

तुम अनिल बाबू के दरवाजे के पास इस तरह क्यो चक्कर काट रहे थे? दूसरो के फटे हुए अँगौछो को इकट्ठा करने का रोग—उन्ह लग गया है क्या?

अरे छि छि, वे हैं बडे आदमी। अँगौछा तो कभी आखो से भी नही देखा। टकिश तौलिया हुए बिना उनका काम ही नही चलता।

तो फिर?

मैंने सोचा था—उनकी आमदनी तो अधिक नही है। फिर इतनी बाबूगीरी चलती किस तरह है?

शायद उधार लेकर।

आजकल के बाजार मे उधार मिलना तो सरल नही है।—उससे अधिक सरल तो धोखा देना है।।

अच्छा, तुमने पुलिस मे खबर दी थी क्या?

नही उसकी आवश्यकता नही हुई। वह निकल आया मेरी स्त्री के मले कपडो की डलिया के भीतर से। किसी को विश्वास भी नही हो सकता।

क्या कहते हो तुम, वह ठीक जगह पर ही तो था।

आप सीधे आदमी हैं, असल बात को समझ ही नही पाते। आप जानते तो हैं—मेरे साले कोलू को। वह किस तरह से शरीर पर फूक मारता फिरता है। पैसा जुडता कहाँ से है? काम किया था उन्होंने, और पत्नी ने उसे गुप्त रूप से दबा लिया।

तुम्हें कैसे पता चला?

हाँ, हा, यह क्या बिना जाने रह सकता है?।

कभी उसे लेते हुए देखा?

जो ऐसा काम करता है, वह क्या दिखा दिखा कर करता है?। इस ओर देखिए न, पुलिस आँखें बन्द किये हुए है, वे लोग हिस्सा जो लेते रहते हैं। यह सब उत्पात आरम्भ हुए थे उस समय से—जब कि दिखाई पडे आप लोगो के ये गाँधी महाराज।

इस बीच वे कहाँ से आ गये?

यही जो उनकी अहिंसा नीति है। धडाधड पिटे बिना, चार का चोरी करने का रोग क्या कभी हट सकता है?। वे स्वयं रहते हैं कोपीन पहिन कर। एक

पैसे का सहारा नही है !! यह सब लम्बी चौडी बातें उन्ही को शोभा देती है !!! हम लोग गृहस्थ आदमी हैं, सुनकर आँखें स्थिर रह जाती हैं। इधर एक और नया फन्दा निकला है—जानते तो हो?! यही, जिसे आप लोग कहते हैं—'चन्दा' उसका मुनाफा कम नही है ! परन्तु वह कहाँ डूब जाता है उसका हिसाब कौन रखता है? महाशय, उस दिन मेरे ही घर म आ उपस्थित हुए—अनाथ-अस्पताल का धन्दा माँगने को। लज्जा आई, और क्या कहूँ ! रसीद-बही हाथ मे लेकर जो आये थे। आप लोग सभी उन्हे जानते हैं। डॉक्टर—नाम लेने की और जरूरत नही है। काई कही उनसे जाकर कह ही दे! वे बीच बीच म आते थे, हम लोगो के घर म—नाडी दबाने को ! चवन्नी-पैसा देने से काम नही चलता था, उसी तरह चवन्नी-पैसे का फल भी नही मिला। फिर भी हजार हो, एम० बी० तो हैं ही ! ऐसी आजकल के समय म उनकी चिकित्सा है कि रोगी लोग उनके पास तक नही जाते ! इसीलिए रुपयों की खीचतान बनी रहती है -

छि छि क्या कह रहे हो तुम ?!

तो महाशय, मैं मुहफट आदमी हूँ ! सच बात मुझ से रोकी नही जाती। उनके मुह के सामने ही सुना सकता हूँ। परन्तु क्या कहूँ—मेरे लडके को वसूली के काम मे रखकर, मेरा मुह बन्द कर दिया ! उसके द्वारा भी बीच-बीच मे सकेत पाता था। दायाँ हाथ खूब अच्छी तरह चलता था ! समझ गये न ?! हमारे देश मे आजकल कमीनापन कैसा असह्य हो उठा है, उसका और एक नमूना आपको सुनाता हूँ !

किस तरह का ?

हमारे मुहल्ले मे एक बेवकूफ है, जिसका नाम उन लोगों ने रख दिया है 'कविवर' ! उसके पास देखा—मेरे बारे मे क्या लिखा है ! घोर लाहवेल ! निन्दको का दल जुट गया है। मुहल्ले मे कान लगाने की सुविधा नही है। कुत्ता-गीदड कहते हुए चिल्लाते रहते हैं मेरे पीछे-पीछे ! इतना साहस नही होता, यदि इन लागो के पीछे न रहते—ख्याति प्राप्त सरक्षक सभी गाँधीजी के चेले !

देखू, देखू क्या लिखा है, बुरा न मानो तो ! आदमी का हाथ तो सधा हुआ है—

उजाला जिसका मिटमिटा,
स्वभाव जिसका खिटखिटा,

बड़े को करना चाहे छोटा।
सब तस्वीर काली कर,
अपने मुह को पोत कर,
सोचता है मैं उस्ताद मोटा !
विधाता के अभिशाप से,
उछला फिरे आप से,
स्वभाव से है बडा गँवार।
भौं भौं कर भूक रहा,
दाँता को घुमा रहा,
कह दो उसे कुत्ता सियार।

वह क्या है ? आपके दरवाजे पर ता पुलिस है !

क्या मामला है ?!

घण्डीबाबू के लडके के नाम केस आया है।

ए ऽ, किसका केस ?

अनाथ अस्पताल के चन्दे के रुपयो म वे गडबड कर बैठे हैं।

झूठ बात है ! आरम्भ से अन्त तक पुलिस की बनावट है !! आप तो जानते ही हैं, मेरा लडका किसी समय आहार निद्रा त्यागकर गाँधी के नाम पर दरवाजे दरवाजे चन्दे की भीख माँगता हुआ घूमा था उसी समय से बराबर उसके ऊपर पुलिस की नजर लगी हुई है। कुछ नही, यह सब पोलिटिकल मामला है।

दादा महाशय, तुम्हारी यह कहानी मुझे तनिक भी अच्छी नही लगी !

राजरानी

कल तुम्हे अच्छी नही लगी थी चण्डी को लेकर की गई बकवास ! वह एक तस्वीर मात्र थी। मोटी-मोटी लाइनो से बनी हुई—उसमे रस नही था ! आज तुमसे जो कुछ कहूँगा, वह सच्ची बात होगी।

कुसुमी अत्यन्त उत्फुल्ल होकर बोली—हा, हाँ वही कहो ! तुम्ही ने तो उस दिन कहा था—मनुष्य कहानी मे लपटकर बराबर सच्ची खबरें देता रहता है। एकदम हलवाई की दूकान सजाये रखता है। सन्देश † के भीतर छेना पहचान म नही आता।

दादा महाशय बोले—यह न होने पर मनुष्य के दिन नही कटते ! कितने ही दतकथा उपन्यास, पारस्य-उपन्यास, पचतन्त्र, न जाने क्या-क्या सजाये गए है। मनुष्य बहुत अशो मे बच्चा होता है—उसे रूप-कथाओ से भुलाना पडता है। अब और भूमिका की जरूरत नही है। बस अब शुरू किया जाए !

एक था राजा, उसकी राजधानी नही थी। राजकन्या की खोज म दूत नये अङ्ग, बग, कलिंग, मगध, कोशल और काची ! सब आकर महाराज को खबर देते कि उन्होंने क्या देखा है ! किसी की आखो के पानी म मोती बरसते हैं किसी की हँसी से मानिक गिरते हैं। किसी का शरीर चन्द्रमा के प्रकाश से गढा गया है—वह जसे पूर्णिमा की रात्रि का स्वप्न हो।

---

† एक बगाली मिठाई का नाम।

राजा सुनते ही समझ जाते कि बातें बढाकर कही जा रही हैं ! राजा के भाग्य मे, सच्ची बात नही जुटती अनुचरो के मुह पर ! वे बोले—मैं स्वय देखने को जाऊँगा ।

सेनापति बोले—तो फौज बुलाऊँ ?

राजा बोले—लडाई करने नही जा रहा हूँ !

मन्त्री बोले—तो पात्र मित्रो को खबर दू ?

राजा बोले—पात्र मित्रो की पसन्द को लेकर कन्या देखने का काम नही चलेगा !

तो फिर राजहस्ती तयार करने को कह दू ?

राजा बोले—मरे दो पाँव हैं !

साथ मे कितने प्यादे जाएगे ?

राजा बोले—केवल मेरी छाया जायेगी ।

अच्छा तो फिर राजवेश पहनिए चुन्नी-पन्ना के हार, माणिक्यजटित मुकुट, हीरा जटित ककन, गजमोती के कुण्डल !

राजा बोले—मैं राज परिधान तो हमेशा पहने ही रहता हू, इस बार सन्यासी का परिधान पहनूँगा ।

सिर पर लगा ली जटा, पहन ली कोपीन, शरीर पर मली भस्म, कपाल पर लगाया तिलक और हाथ मे ले लिया कमण्डलु व वेल की लकडी का डण्डा ! 'बमबम महादेव'—कहकर निकल पडे मार्ग पर। देश देश मे चर्चा फल गई—बाबा पिनाकीश्वर उतर आये हैं—हिमालय की गुहा से उनकी एक सौ पच्चीस वष की तपस्या समाप्त हो गई है ।

राजा पहले गये अङ्ग देश म । राजकन्या खबर पाकर बोली—बुलाओ मेरे पास !

कन्या के शरीर का रग उज्ज्वल श्यामल, बालो का रग जसे फिङ्गे† के पख, दोनो आँखो मे हरिण जैसी चौंक पडने वाली दष्टि । वे बठी हुई शृङ्गार कर रही थी । कोई बादी ले आई स्वणचन्दन का लेप, जिससे मुह का रग ऐसा हो जाए, जैसा चम्पा का फूल हो ! कोई ले आई भृगराज तल, जिससे केश ऐसे हो

---

†एक चिडिया का नाम जो मटमैले रग की होती है ।

जाए, जैसे पम्पासरोवर की लहरें हों। कोई ले आई मकडी के जाल जैसी साडी। कोई ले आई हवा स भी हल्की ओढनी। यही करते करते दिन के तीन पहर बीत गये। किसी तरह भी कुछ मन के मुताबिक नही हुआ। सयासी से बोली—बाबा मुझे ऐसे आखो के भ्रम म डालने वाले साज का पता बता दो जिसस राज-राजेश्वर को चकाचौध लग जाए, राज काज पडा रह जाए, केवल मेर मुह की ओर देखते ही वे दिन रात बिताते रह।

सन्यासी बोले—और कुछ भी नही चाहिए ?

राजकन्या बोली—नही, और कुछ भी नही!

स यासी बोले—अच्छा, तो मै जाता हूँ, पता लगने पर फिर मिलूगा!

राजा वहा से गये बग—देश मे। वहाँ की राजकया न सुनी सयासी के नाम की चर्चा। वे आकर प्रणाम करके बोली—बाबा, मुझे ऐसा कण्ठ दो, जिससे मेरे मुह की बातो से राज राजेश्वर के कान भर जाएँ, सिर घूम जाए, मन उतावला हो उठे! मेरे अतिरिक्त और किसी की भी बात उनके कानो म न पडे। मैं जो बुलवाऊँ—वही बोलें!

सयासी बोले—उसी मन्त्र को खोजने के लिए मैं निकला हूँ। यदि मिलेगा, तो लौटकर भेंट करूँगा।

कहकर वे चले गये।

फिर गये कलिंग मे। वहा दूसरी ही हवा थी—अन्त पुर म। राजकया मन्त्रणा कर रही थी कि किस तरह से काञ्चीराज को जीतकर—उनका सेनापति वहाँ की रानी का सिर नीचा कर दे सकता है। और कौशल का घमण्ड भी उन्ह सहन नही हो रहा था। उसकी राजलक्ष्मी को बाँदी बनाकर, उनके पाँवो मे तेल मलने के काम मे लगा दिया जाएगा!

सयासी की खबर पाकर उन्होंने बुलवा भेजा। बोली—बाबा, सुना है—श्वेतद्वीप म सहस्रध्वनि अस्त्र है, जिसके तेज से नगर ग्राम सबकुछ जलकर भस्म हो जाते है। मैं जिनसे विवाह करूँगी, मैं चाहती हूँ कि उनके पावो के पास बडे बडे राजबदी, हाथ जोडे खडे रह, और उन राजाओ की स्त्रियाँ बन्दिनी होकर कोई तो चँवर डुलाए, कोई छत्र पकडकर खडी रहे और कोई मेरा पनडब्बा लाए।

सयासी बोले—और कुछ नही चाहिए तुम्ह ?

गजकन्या बोली—और कुछ भी नही।

सन्यासी बोले—उन देशो को भस्म कर देने वाले अस्त्र की खोज मे मैं भी जा रहा हूँ।

सन्यासी चले गये। बोले—धिक्कार है! चलते चलते आ पडे एक वन मे। खोल फेंके जटाजूट! झरने के पानी मे स्नान करके शरीर की भस्म धो डाली। तब तीन प्रहर का समय हो चुका था। धूप तेज थी, शरीर श्रान्त था, क्षुधा प्रबल थी! आश्रम ढूढते-ढूढते—नदी के किनारे जाकर देखी एक पत्ता की कुटिया। उस जगह एक छोटा चूल्हा बनाकर, एक लडकी ने साग-सब्जी चढा रखी थी रांधने के लिए। वह बकरियाँ चराती थी वन मे, वह मधु (शहद) एकत्र कर राजमहल म भेज देती थी। उसके दिन कट गये थे इसी काम मे। अब सूखी लकडी जलाकर उसने शुरू किया था रसोई बनाना। उसके पहनने के कपडो मे दाग लग रहे थे, उसके दोना हाथो म दो शख की चूडिया थी, कान म लगा रखी थी एक धान की सीक! दोना आँखें थी उसकी भँवरे की तरह काली। स्नान करके उसने भीगे बाला को पीठ पर फैला दिया था—जैसे बादलो से पूण रात्रि का अतिम प्रहर हो!

राजा बोले—बडी भूख लग रही है!

लडकी बोली—थोडा सा सब्र करिए, मैंन रसोई चढा दी है, अभी तैयार हो जाएगी आपके लिए!

राजा बोले—और तुम क्या खाओगी तब?

वह बोली—'मैं वन की लडकी हूँ, जानती हूँ कि कहा से फल मूल इकट्ठे करके पाय जा सकते हैं। वही मेरे लिए ढेर हो जाएँगे! अतिथि को अन्न देकर जो पुण्य होना है, गरीबो के भाग्य मे वह तो सहज ही नहीं जुट पाता।

राजा बोले—तुम्हारा और कौन है?

लडकी बोली—मेरे बूढे पिता हैं—वन के बाहर उनका छोटा-सा घर है। मेरे अतिरिक्त उनका और कोई नही है! काम खत्म करके, कुछ खाने को ले जाती हूँ उनके पास, मेरे लिए वे राह देख रहे हैं!

राजा बोले—तुम अन्न लेकर चलो, और मुझे दिखा दो—वे सब फल मूल, जिन्हे स्वय इकट्ठे करके खाती हो।

कन्या बोली—मुझे अपराध जो लगेगा!

राजा बोले—तुम देवता का आशीर्वाद पाओगी ! तुम्हें कोई भय नही है। मुझे राह दिखाती हुई ले चलो !

पिता के लिए तयार की हुई अन्न की थाली—वह सिर पर रखकर ले चली। फल मूल सग्रह करके—दोना जनो ने उसी को खा लिया। राजा ने जाकर देखा—बूढा बाप फूस के घर के दरवाजे पर बैठा है। वह बोला—बेटी, आज देर क्या हो गयी ?

कन्या बोली—पिताजी, अतिथि को लाई हूँ तुम्हारे घर म !

वद्ध व्यस्त होकर बोला – हमारा गरीबो का घर है क्या देकर मैं आतिथ्य सवा करूँ ?

राजा बोले—मैं तो और कुछ भी नही चाहता—पाइ है तुम्हारे कन्या के हाथ की सेवा। आज मैं विदा लेता हूँ ! किसी दूसरे दिन आऊँगा !!

सात दिन सात रात बीत गये, इस बार राजा आये राजवश मे। उनके घाडे-रथ सब कुछ रह गये वन के बाहर ही। वद्ध के पाँवो के समीप सिर रखकर प्रणाम किया, बोले—मैं विजयपत्तन का राजा हूँ। रानी ढूढने को निकला था देश विदेश मे ! इतने दिनो बाद पाई है—यदि तुम मुझे दान करो, और कन्या राजी हो तो !!

वद्ध की आँखें भर आई। आया राजहस्ती—लकडहारिन लडकी को बगल मे बैठाकर, राजा लौट गये राजधानी को।

अग, बग, कलिंग की राजकन्याओ ने सुनकर कहा—छि !

मुद्रक शुक्ला आर्ट प्रिंटर्स, मौजपुर, दिल्ली ५३